लीचिमा

राजभाषा पत्रिका

वर्ष 5 : अंक 1 (2019)

भाकृअनुप
ICAR

ISO 9001 : 2008

राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर

संस्थान में हो रही विभिन्न गतिविधियों की एक झलक

लीचिमा

राजभाषा पत्रिका

वर्ष 5 : अंक 1 (2019)

संरक्षक एवं प्रकाशक
डॉ. विशाल नाथ
निदेशक
भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र
मुशहरी, मुजफ्फरपुर, बिहार

भा.कृ.अनु.प. - राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र
मुशहरी फार्म, मुजफ्फरपुर 842 002, बिहार
ई-मेल : nrclitchi@yahoo.com
वेबसाइट : www.nrclitchi.org

प्रधान संपादक

डॉ. शेषधर पाण्डेय

संपादक मण्डल

डॉ. अमरेन्द्र कुमार
डॉ. रामकिशोर पटेल
डा. विनोद कुमार
डॉ. जयप्रकाश वर्मा
श्रीमती उपज्ञा साह

केन्द्र की राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सदस्य

डॉ. विशाल नाथ, अध्यक्ष
डॉ. शेषधर पाण्डेय, सदस्य
डॉ. अमरेन्द्र कुमार, सदस्य
डॉ. विनोद कुमार, सदस्य एवं प्रभारी राजभाषा प्रभाग
डॉ. इवनिंग स्टोन मारबोह, सदस्य
श्री रामजी गिरि, सदस्य
श्री दिलीप कुमार, सहायक सदस्य
डॉ. जयप्रकाश वर्मा, सदस्य

अस्वीकरण

लीचिमा पत्रिका में प्रकाशित तथ्यात्मक लेखों के लिए लेखक ही उत्तरादायी हैं, न कि भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुशहरी, मुजफरपुर के प्रकाशक, संरक्षक या प्रकाशन समिति। उपयोगकर्त्ताओं को यह सलाह दी जाती है कि लिचिमा पत्रिका में दी गयी जानकारियों को उपयोग में लाने से पहले किसी विशेषज्ञ से विचार-विमर्श करें/सलाह लें। पत्रिका में सुधार एवं परिपक्वता हेतु सुझाव आमंत्रित है।

प्रकाशक एवं सम्पर्क सूत्र
निदेशक
भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र
मुशहरी, मुजफ्फरपुर, बिहार-842 002
ई-मेल : nrclitchi@yahoo.com
वेबसाइट : www.nrclitchi.org.in

डॉ. विशाल नाथ
निदेशक

भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र
मुजफ्फरपर, बिहार

ISO 9001 : 2008

निदेशक की कलम से

लीची देश का एक उभरता हुआ फल है। लीची के क्षेत्रफल एवं उत्पादन में उत्तरोत्तर वृद्धि देखी जा रही है। लीची क्षेत्रफल का आँकड़ा एक लाख हेक्टेयर के पार होने वाला है जबकि उत्पादन सात लाख के ऊपर पहुँच गया है। देश में अब छः माह तक लीची के ताजे फल उपलब्ध होने जा रहें हैं। जहाँ एक तरफ उत्तर भारत में लीची गर्मियों के समय धूम मचाती है वही दूसरी ओर दक्षिण भारत की लीची क्रिसमस के उल्लास में रंग और मिठास घोलने को तैयार है। यह सब सम्भव हुआ है वैज्ञानिकों के अथक प्रयास एवं किसानों के दिन-रात मेहनत और कृषि एवं बागवानी की दूरगामी नीतियों के कारण।

राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर, लीची के विभिन्न आयामों पर अनवरत शोध कार्य कर रहा है। केन्द्र ने अनेक परियोजनाओं के माध्यम से ऐसी व्यवहारिक एवं लोकप्रिय तकनीकों का विकास किया है जो लीची कृषकों एवं लीची से जुड़े उद्यमियों की आमदनी बढ़ाने में उपयोगी सिद्ध हो रही हैं।

किसानों की आमदनी को बढ़ाने में लीची उत्पादन एवं परिरक्षण की आधुनिक तकनीकें काफी कारगर सिद्ध हो सकती हैं। मैं इस पत्रिका में प्रस्तुत लेखों एवं अन्य जानकारियों के लिए उनके लेखकों को विशेष रूप से धन्यवाद देना चाहता हूँ जिनके प्रयासों को इस पत्रिका के माध्यम से आपके समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है। मैं केन्द्र के हिन्दी अनुभाग से जुड़े वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों का भी अभार एवं धन्यवाद करना चाहूँगा, जिन्होंने लगातार हिन्दी के प्रचार-प्रसार में सहायता प्रदान की और केन्द्र को विगत कई वर्षों से लगातार प्रतिस्पर्धा में बनाये रखा।

राजभाषा पत्रिका ''लीचिमा'' के इस अंक के प्रकाशन के अवसर पर हमें यह बताते हुए अपार हर्ष हो रहा है कि केन्द्र अपने वैज्ञानिकों के दल के साथ तत्परता से अपना कार्य कर रहा है और हमारे केन्द्र द्वारा विकसित क्षत्रक प्रबंधन एवं उत्तम कृषि तकनीकों को अपनाकर देश में लीची का उत्पादन हो रहा है जिसके लिए मैं केन्द्र के वैज्ञानिकों, कर्मियों एवं लीची किसानों को हार्दिक बधाई देता हूँ। केन्द्र के बढ़ते हुए क्रियाकलापों एवं राष्ट्रीय मुद्दों को बेहतर मंच प्रदान करने में राजभाषा पत्रिका 'लीचिमा' दिन प्रतिदिन अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। पत्रिका का पंचम अंक सरल भाषा में प्रस्तुत गुणवत्तायुक्त वैज्ञानिक लेखों के साथ-साथ आमोद-प्रमोद प्रभाग में मनोरंजन एवं बौद्धिक विकास संबंधी सामाग्री को अपने अन्दर समेटे है जो न केवल जन-जन तक बल्कि जन मानस के मन मस्तिष्क पर अमिट छाप छोड़ने में सफल हो सकती है।

इस उम्मीद से साथ कि आप सभी अपने बहुमूल्य लेख, कविताएं, कहानियाँ, सफलता की गाथाएँ इत्यादि 'लीचिमा' में प्रकाशन हेतु भेजते रहेंगे, मैं 'लीचिमा' के पाचवें अंक को देश के कृषक बंधुओं, उद्यमियों एवं नीति निर्धारकों को समर्पित करता हूँ।

धन्यवाद !

मुजफ्फरपुर
मार्च, 2020

(विशाल नाथ)

डॉ. शेषधर पाण्डेय
प्रधान वैज्ञानिक / प्रभारी पी.एम.ई. प्रकोष्ठ
एवं प्रधान संपादक लीचिमा

भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र
मुजफ्फरपर, बिहार

ISO 9001 : 2008

संपादकीय

लेखन संचार का एक सशक्त माध्यम है। लेखन के उद्‌भव के बाद ही अर्जित ज्ञान का संरक्षण एवं प्रसार संभव हो पाया और ज्ञान का आदान प्रदान प्रारंभ हुआ। हिंदी पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से विद्वानों के लेखन क्षमता को प्रोत्साहन के साथ-साथ ही उन्हें अपने सृजनात्मक कौशल को प्रदर्शित करने का अवसर मिलता है। अपनी संस्कृति में ज्ञान एवं विज्ञान को सहेजने की एक समृद्ध परिपाटी रही है, लेकिन विदेशी शासनों के कारण हमारी अपनी भाषाओं में हमारे ज्ञान को सहेजने की परंपरा पिछड़ती चली गयी, जो कुछ सत्य है कुछ भ्रांति। भाषा और बोली या लेखन केवल अंग्रेजी भाषा में ही संभव है यह वास्तविकता से परे है। भाषा और बोली संस्कृति की संवाहिका भी है क्योंकि हर देश-काल की संस्कृति इन से ही सुरक्षित रहती है।

आज हिन्दी विश्व की सबसे अधिक बोली व समझी जाने वाली भाषा है। यह हमारे लिए हर्ष का विषय है कि हम विगत 5 वर्षों से राजभाषा हिन्दी पत्रिका लीचिमा का प्रकाशन कर रहे हैं। इन जानकरियों को आम लोगों, विशेष रूप से किसानों तक पहुँचाने में सबसे सशक्त व सरल माध्यम हिंदी ही हो सकती है।

केन्द्र द्वारा प्रकाशित होने वाली पत्रिका लीचिमा हमारे केन्द्र के बढ़ते कदमों और प्रयासों का लेखा जोखा नहीं है परन्तु इसके माध्यम से केन्द्र के द्वारा विकसित तकनीकों एवं ज्ञान विज्ञान से संबंधित जानकारियों को जन मानस तक पहुँचाने का प्रयास किया जा रहा है। हमारा उद्देश्य है कि हम हिंदी भाषा के माध्यम से कृषि अनुसंधानों, तकनीकों, ज्ञान-विज्ञान, स्वास्थय एवं स्वच्छता अभियान संबंधी जानकारियों को जन मानस तक पहुँचा सकें। लीचिमा के निरंतर प्रकाशन की अनुमति के लिए हम निदेशक एवं पत्रिका संपादन में सहयोग के लिए सभी लेखकों, संपादक मंडल एवं राजभाषा कार्यान्यवन समिति के सभी सदस्यों के आभारी हैं जिनके सहयोग से यह प्रकाशन संभव हुआ।

मैं सभी विशेषज्ञों तथा पाठकों से अगले अंक के लिए आलेख एवं बहुमूल्य सुझाव के लिए अनुरोध करता हूँ जिससे आगामी अंक को और भी उत्कृष्ट बनाया जा सके।

(शेषधर पाण्डेय)

मुजफ्फरपुर
मार्च, 2020

लीचिमा

विषय-वस्तु

1.	राजभाषा अधिनियम *डॉ. शेषधर पाण्डेय*	1
2.	उद्यानकी फसलों की पौधशाला स्थापना एवं प्रबन्धन *प्रणव पाण्डेय, विकाश चन्द्र वर्मा एवं पवन शुक्ला*	5
3.	लीची में आकस्मिक पुष्पन वाले आनुवांशिक का चयन *नारायण लाल, आलोक कुमार, अभय कुमार, इवनिंग स्टोन मार्बो एवं विशाल नाथ*	9
4.	लौंगन एक सशक्त फल *नारायण लाल, आलोक कुमार, अभय कुमार, इवनिंग स्टोन मार्बो एवं विशाल नाथ*	10
5.	फलोत्पादन में पादप हारमोन के प्रयोग से लाभ *डी.के. सिंह एवं प्रणव पाण्डेय*	11
6.	उत्तर भारत में स्ट्रॉबेरी की खेती से किसानों की आय में वृद्धि *ज्योति सिंह, प्रियांशु सिंह, तेजबल सिंह एवं नारायन लाल*	15
7.	एवोकाडो : खेती एवं उसके स्वास्थ्यवर्धक गुण *सुरभि सुमन एवं रामाशीष कुमार*	21
8.	लीची के छोटे प्रसंस्करण के लिए बुनियादी ढाँचा तथा संरक्षण हेतु प्रसंस्कृत उत्पाद *विकाश चन्द्र वर्मा, प्रणव पाण्डेय एवं पवन शुक्ला*	23
9.	वर्मीकम्पोस्ट बनाने की विधि एवं उपयोग *विजय कुमार, जितेन्द्र चन्द्र चन्दोला एवं संतोष कुमार सिंह*	27
10.	लीची की बेहतर उत्पादकता और गुणवत्ता के लिये एनआरसीएल माइक्रोबियल कंसोर्टियम *विनोद कुमार*	30
11.	एकल कृषि बनाम जैव-विविधता आधारित संपोषणीय कृषि *अभय कुमार, प्रतिभा सिंह, नारायण लाल, अलोक कुमार गुप्ता एवं इवनिंग स्टोन मर्बोह*	34
12.	फल उद्यानिकी में नैनोटेक्नोलॉजी की भूमिका *संजय कुमार सिंह, सुशील कुमार पूर्बे, विनोद कुमार, स्वाति शर्मा एवं जय प्रकाश वर्मा*	38
13.	जीनोमिक लहर की नई सवारीः ''जैव प्रौद्योगिकी पारंपरिक प्रजनन की जगह नहीं लेगी'' *अभय कुमार, प्रतिभा सिंह, सुजीत कुमार बिशी, चन्दन कुमार गुप्ता एवं मनेश चंद्र डागला*	42

14. कृषि क्षेत्र में महिलाओं की पहचान 44
वंदना कुमारी एवं प्रज्ञा कुमारी
15. समस्त रोगों का रामबाण औषधि-मिट्टी 49
संतोष कुमार सिंह, विजय कुमार एवं जितेन्द्र चन्द चन्दोला
16. फैजाबाद में लांगनः रोचक कथ्य और तथ्य 52
डॉ. राज किशोर
17. दहेजप्रथा 54
सावन कुमार
18. राष्ट्र-निर्माण और नारी 57
पवन कुमार एवं गीता कुमारी
19. बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ 59
लोकेश कुमार
20. गगनयान-भारत का पहला मानव अंतरिक्ष कार्यक्रम 60
एकता
21. विश्व योग दिवस की वर्तमान समय में प्रासंगिकता 61
22. हिन्दी के प्रमुख कवियों की एक झलक 62
उपज्ञा साह एवं श्याम पंडित
23. क्या करें, क्या न करें। स्वस्थ जीवन के अनमोल 65
रामजी गिरी
24. राशि वन : मानव जीवन पर प्रभाव 66
अमरेन्द्र कुमार, शेषधर पाण्डेय, रामकिशोर पटेल, रामजी गिरी एवं मुनीष कुमार

राजभाषा अधिनियम

डॉ. शेषधर पाण्डेय

प्रधान वैज्ञानिक

भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर (बिहार)

भारत गणराज्य के चौदहवें वर्ष में संसद द्वारा निम्नलिखित रूप से यह अधिनियम हो:-

1. **संक्षिप्त नाम और प्रारंभ-** यह अधिनियम राजभाषा अधिनियम, 1963 कहा जा सकेगा।

(2) धारा 3 जनवरी, 1965 के 26वें दिन को प्रवृत्त होगी और इस अधिनियम के शेष उपबंध तारीख को प्रवृत होंगे जिससे केन्द्रीय सरकार शासकीय में अधिसूचना द्वारा, नियत करे और इस अधिनियम के विभिन्न उपबंधों के लिए विभिन्न तारीख नियत की जा सकेंगी।

3. **परिभाषाएं-** इस अधिनियम में जब तक कि संदर्भ से अन्यथा उपेक्षित न हो-

(क) ''नियत दिन'' से, धारा 3 के संबंध में, जनवरी 1965 का 26वां दिन अभिप्रेत है और इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध के संबंध में वह दिन अभिप्रेत है जिस दिन को वह उपबंध प्रवृत होता है।

(ख) ''हिन्दी से वह हिन्दी अभिप्रेत है जिसकी लीपि देवनगरी है।

संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए संसद में प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा का बना रहना (1) संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की कालावधि की समाप्ति हो जाने पर भी, हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा, नियत दिन से ही,

(क) संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए जिनके लिए यह उस दिन से एक पहले प्रयोग में लाई जाती थी। तथा

(ख) संसद में कार्य के संव्यवहार के लिए प्रयोग में लाई जाती रही सकेगी :

परन्तु संघ और किसी ऐसे राज्य के बीच, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, पत्रादि के प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयोग में लाई जाएगी: परन्तु यह और कि जहां किसी ऐसे राज्य के, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में अपनाया है और किसी राज्य के, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, बीच पत्रादि के प्रयोजन के लिए हिन्दी को प्रयोग में लाया जाता है, वहां हिन्दी में ऐसे पत्रादि के साथ-साथ उसका अनुवाद अंग्रेजी भाषा में भेजा जाएगा:

परन्तु यह और भी कि उस उपधारा की किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह किसी ऐसे राज्य को, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, संघ के साथ या किसी ऐसे राज्य के साथ, उसकी सहमति से, पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिन्दी को प्रयोग में लाने से निवारित करती है, और ऐसे किसी मामले में उस राज्य के साथ पत्रादि के प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग बाध्यकर न होगा।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहाँ पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिन्दी अंग्रेजी भाषा-

(i) केन्द्रीय सरकार के मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के और दूसरे मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के बीच:

(ii) केन्द्रीय सरकार के मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के और केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व के या नियंत्रण में के किसी नियम या कंपनी या उसके किसी कार्यालय के बीच:

(iii) केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी नियम या कंपनी या उसके किसी कार्यालय के और किसी अन्य ऐसी निगम या कंपनी या कार्यालय के बीच, प्रयोग में लाई जाती है वहां उस तारीख तक, जब तक पूर्वोक्त संबंधित मंत्रालय, विभाग कार्यालय या निगम या कंपनी के कर्मचारीवृन्द हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता, ऐसे पत्रादि का अनुवाद, यथास्थिति, अंग्रेजी भाषा

या हिन्दी में भी दिया जाएगा।

(3) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, हिन्दी और अंग्रेजी भाषा दोनों ही-

(i) संकल्पों, साधारण आदेशों, नियमों, अधिसूचनाओं, प्रशासनिक या अन्य प्रतिवेदनों या प्रेस विज्ञप्तियों के लिए, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा या केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में किसी निगम या कंपनी या ऐसे निगम या कंपनी के किसी कार्यालय द्वारा निकाले जाते हैं या किए जाते हैं

(ii) ससंद के किसी सदन या सदनों के समक्ष रखे गए प्रशासनिक तथा अन्य प्रतिवेदनों और राजकीय कागजपत्रों के लिए:

(iii) केन्द्रीय सरकार या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा या उसकी ओर से या केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में किसी निगम या कंपनी द्वारा या ऐसे निगम या कंपनी के किसी कार्यालय द्वारा निष्पादित संविदाओं और करारों के लिए तथा निकाली गई अनुज्ञप्तियों, अनुज्ञपत्रों, सूचनाओं और निविदा प्ररूपों के लिए,

प्रयोग में लाई जाएंगी:

(4) उपधारा (1) या उपधारा (2) या उपधारा (3) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना यह है कि केन्द्रीय सरकार धारा 8 अधीन बनाए गए नियमों द्वारा उस भाषा या उन भाषाओं का उपबंध कर सकेगी जिसे या जिन्हें संघ के राजकीय प्रयोजन के लिए, जिसके अंतर्गत किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय का कार्यकरण है, प्रयोग में लाया जाना है और ऐसे नियम बनाने में राजकीय कार्य के शीघ्रता और दक्षता के साथ निपटारे का तथा जनसाधारण के हितों का समयक ध्यान रखा जाएगा और इस प्रकार बनाए गए नियम विशिष्टतया यह सुनिश्चित करेंगे कि जो व्यक्ति संघ कार्यकलाप के संबंध में सेवा कर रहे हैं और जो या तो हिन्दी में या अंग्रेजी भाषा में प्रवीण हैं वे प्रभावी रूप से अपना काम कर सकें और यह भी कि केवल इस आधार पर कि वे दोनों ही भाषाओं में प्रवीण नहीं हैं उनका कोई अहित नहीं होता है।

(5) उपधारा (1) के खंड (क) के उपबंध और उपधारा (2), उपधारा (3) और उपधारा (4) के उपबंध तब तक प्रवृत बने रहेंगे जब तक उनमें वर्णित प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग समाप्त कर देने के लिए ऐसी सभी राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा, जिन्होंने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, संकल्प पारित नहीं कर दिया जाता।

4. राजभाषा के संबंध में समिति-(1) जिस तारीख को धारा 3 प्रवृत्त होती है उससे दस वर्ष की समाप्ति के पश्चात्, राजभाषा के संबंध में एक समिति, इस विषय का संकल्प संसद के किसी भी सदन में राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी से प्रस्तावित और दोनों सदनों द्वारा पारित किए जाने पर गठित की जाएगी।

(2) इस समिति में तीस सदस्य होंगे जिनमें से बीस लोक सभा के सदस्य होंगे तथा दस राज्य सभा के सदस्य होंगे, जो क्रमशः लोकसभा के सदस्यों तथा राज्यसभा के सदस्यों द्वारा अनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे।

(3) इस समिति का कर्तव्य होगा कि वह संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी के प्रयोग में की गई प्रगति का पुनर्विलोकन करे और उसकी सिफारिशें करते हुए राष्ट्रपति को प्रतिवेदन करें और राष्ट्रपति उस प्रतिवेदन को संसद के हर एक सदन के समक्ष रखवाएगें और सभी राज्य सरकारों को भिजवाएगें।

(4) राष्ट्रपति उपधारा (3) में निर्दिष्ट प्रतिवेदन पर और उस पर राज्य सरकारों ने यदि कोई मत अभिव्यक्त किए जो तो उन पर विचार करने के पश्चात् उस समस्त प्रतिवेदन या उसके किसी भाग के अनुसार निर्देष निकाल सकेगाः

5. केन्द्रीय अधिनियमों आदि का प्राधिकृत हिन्दी अनुवाद (1) नियत दिन को और पश्चात् शासकीय राजपत्र में राष्ट्रपति के प्राधिकार से प्रकाशित-

(क) किसी केन्द्रीय अधिनियम का या राष्ट्रपति द्वारा प्रख्याति किसी अध्यादेश का, अथवा

(ख) संविधान के अधीन या किसी

केन्द्रीय अधिनियम के अधीन निकाले गए किसी आदेश, नियम, विनियम या उपविधि का, हिन्दी में अनुवाद उसका हिन्दी में प्राधिकत्रत पाठ समझा जाएगा।

(2) नियत दिन से ही उन सब विधेयक के, जो संसद के किसी भी सदन में पुनःस्थापित किए जाने हों और उन सब संशोधनों के, जो संबंध में संसद के किसी भी सदन में प्रस्तावित किए जाने हो, अंग्रेजी भाषा के प्राधिकृत के साथ-साथ उनका हिन्दी में अनुवाद भी होगा जो ऐसी रीति से प्राधिकृत किया जाएगा, जो इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित की जाए।

6. कतिपय दशाओं मे राज्य अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी अनुवाद- जहाँ किसी के विधान-मंडल के उस राज्य के विधान-मंडल द्वारा पारित अधिनियमों में अथवा उस राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों में प्रयोग के लिए हिन्दी से भिन्न कोई भाषा विहित की है वहाँ, संविधान के अनुच्छे 348 के खंड (3) द्वारा अपेक्षित अंग्रेजी भाषा में अनुवाद के अतिरिक्त, उसका हिन्दी में अनुवाद उस राज्य के शासकीय राजपत्र में, उस राज्य के राज्यपाल के प्राधिकार से, नियत दिन को या उसके पश्चात् प्रकाशित किया जा सकेगा। और ऐसी दशा में ऐसे किसी अधिनियम या अध्यादेश को हिन्दी में अनुवाद हिन्दी भाषा में उसका प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा।

7. उच्च न्यायालय के निर्णयों आदि में हिन्दी या अन्य राजभाषा का वैकल्पिक प्रयोग - नियत दिन से ही तत्पश्चात् किसी भी दिन से किसी राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से, अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी या उस राज्य की राजभाषा का प्रयोग, उस राज्य के उच्च न्यालय द्वारा पारित या दिए गए किसी निर्णय, डिग्री या अदेश के प्रयोजनों के लिए प्राधिकृत कर सकेगा और जहाँ कोई निर्णय, डिग्री या आदेश (अंग्रेजी भाषा से भिन्न) ऐसी किसी भाषा में पारित किया या दिया जाता है वहाँ उसके साथ-साथ उच्च न्यायालय के प्राधिकार से निकाला गया अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद भी होगा।

8. नियिम बनाने की शक्ति-(1) केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा बना सकेगी।

(2) इस धारा के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा। यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी। यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप से ही प्रभावी होगा। यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् यह निष्प्रभाव हो जाएगा। किंतु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।

9. कतिपय उपबंधों का जम्मू-कश्मीर राज्य के लिए लागू न होना-धारा 6 और 7 के उपबंध जम्मू-कश्मीर राज्य के लिए लागू नहीं होंगे।

अनुच्छेद (343 (3) के प्रावाधान व प्रधानमंत्री के आश्वासन को ध्यान में रखते हुए 10 मई, 1963 को राजभाषा अधिनियम बनाया गया, इसके अनुसार हिंदी संघ की राजभाषा व अंग्रेजी सह राजभाषा के रूप में प्रयोग में लायी जायेगी। इसमें 1976 में संशोधन किया गया इसके कुछ उपबंध इस प्रकार है।

1. अधिनियम की धारा संघ के उन सभी सरकारी प्रयोजनों के लिए (क) के अनुसार 3, जिनके लिए 26 जनवरी, 1965 से तत्काल पूर्व अंग्रेजी का प्रयोग किया जा रहा था (ख) संसद में कार्य निष्पादन के लिए जनवरी 26, 1965 के बाद हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखा जा सकेगा।

2. केन्द्र सरकार और हिन्दी को राजभाषा के रूप में न अपनाने वाले किसी राज्य के बीच पत्राचार अंग्रेजी में होगा, वशर्ते उस राज्य ने इसके लिए हिन्दी का प्रयोग स्वीकार न किया हो। इसी प्रकार, हिन्दी भाषी राज्यों की सरकारें ऐसे राज्यों की सरकारों के साथ अंग्रेजी में पत्राचार करेगी और यदि

वे ऐसे राज्यों को कोई पत्र हिन्दी में भेजती है तो साथ में ही उसका अंग्रेजी अनुवाद भी भेजेंगी। पारस्पिरिक समझौते से कोई भी दो राज्य आपसी पत्राचार में हिन्दी का प्रयोग करें तो इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी।

3. केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों, आदि के बीच पत्र व्यवहार के लिए हिन्दी अथवा अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता है। पत्रादि का दूसरी भाषा में अनुवाद उपलब्ध कराया जाता रहेगा।

4. राजभाषा अधिनियम की धारा (3) 3 के अनुसार निम्नलिखित कागजपत्रों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग अनिवार्य है 1-2 संकल्प सामान्य आदेश 3, नियम 4 अधिसूचाएँ, 5 प्रशासनिक तथा अन्य रिपोर्ट 6 प्रेस विज्ञप्तियाँ 7 संसद के किसी सदन या सदनों के समक्ष रखी जाने वाली प्रशासनिक तथा अन्य रिपोर्टें एवं 8 सरकारी कागजपत्र 9 संविदाएँ 10 करार 11 अनुज्ञप्तियाँ, 12 अनुज्ञापत्र 13 टेंडर नोटिस और 14 टेंडर फार्म।

5. धारा (4)-3 के अनुसार अधिनियम के अधीन नियम बनाते समय यह सुनश्चित कर लेना होगा कि यदि केन्द्रीय सरकार का कोई कर्मचारी हिन्दी या अंग्रेजी में से किसी एक ही भाषा में प्रवीण हो, तब वह अपना सरकारी कामकाज प्रभावी ढंग से कर सके और केवल इस आधार पर कि वह दोनो भाषाओं में प्रवीण नहीं है, उसका कोई अहित न हो।

6. राजभाषा अधिनियम (संशोधन) (5) 3 द्वारा अधिनियम की धारा 1967 के रूप में यह उपबंध किया गया है कि उपर्युक्त विभिन्न कार्यों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखने संबंधी व्यवस्था तब तक जारी रहेगी, जब तक हिन्दी को राजभाषा के रूप में अपनाने वाले सभी राज्यों के विधान मंडल अंग्रेजी का प्रयोग खत्म करने के लिए आवश्यक संकल्प पारित न करें और इन संकल्पों पर विचार करने के बाद संसद का प्रत्येक सदन भी इसी आशय का संकल्प पारित न कर दें।

7. अधिनियम की धारा के अनुसार किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से, उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए अथवा पारित किसी निर्णय, डिग्री अथवा आदेश के लिए, अंग्रेजी भाषा के अलावा, हिन्दी अथवा राज्य की राजभाषा का प्रयोग प्राधिकृत कर सकता है। तथापि यदि कोई निर्णय डिग्री या आदेश अंग्रेजी से किसी भिन्न भाषा में दिया या पारित किया जाता है तो उसके साथ संबंधित उच्च न्यायालय के प्राधिकार से अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद भी दिया जाएगा। अब तक उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और बिहार के राज्यपालों ने अपने उच्च न्यायालयों में उपर्युक्त उद्देश्यों के लिए राष्ट्रपति से हिन्दी के प्रयोग की अनुमति ली है।

हिंदी को राजभाषा का सम्मान उसका अधिकार है यहाँ विस्तार से जाने की आवश्यकता नहीं है केवल राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा बताये गये लक्षणों पर दृष्टि डाल लेना ही पर्याप्त होगा।

- उसे सरकारी अधिकारी आसानी से सीख सकें।
- वह समस्त भारत में धार्मिक, आर्थिक, और राजनितिक संपर्क के माध्यम के रूप में प्रयोग के लिए सक्षम हो।
- वह अधिकांश भारतवासियों द्वारा बोली जाती हो,
- सारे देश को उसे सीखने में आसनी हो,
- ऐसी भाषा को चुनते समय अंग्रेजी या क्षणिक हितों पर ध्यान न दिया जाए।

हिंदी भाषा इन लक्षणों पर बिलकुल खरी उतरती है। भारत का नागरिक होने के नाते हमारा कर्तव्य है कि हम भारतीय भाषाओं के विकास पर बल दें और हिन्दी का विकास करके सभी भाषाओं को जोड़ने का प्रयास करें तभी हिंदी सही रूप में राष्ट्रभाषा बन पायेगी।

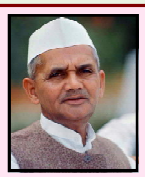

हिंदी पढ़ना और पढ़ाना हमारा कर्तव्य है। उसे हम सबको अपनाना चाहिए।

लाल-बहादुर शास्त्री

उद्यानकी फसलों की पौधशाला स्थापना एवं प्रबन्धन

प्रणव पाण्डेय, विकाश चन्द्र वर्मा एवं पवन शुक्ला

सहायक प्राध्यापक-सह-कनीय वैज्ञानिक
वीर कुँवर सिंह कृषि महाविद्यालय, डुमरॉव, बक्सर, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

उत्पादक के लिए प्रमाणित उन्नत प्रजाति के पौध का योगदान फसल उत्पादन में हमेशा से रहा है। लेकिन उन्नत प्रजाति के पौध को प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ होता जा रहा है क्योंकि आजकल अविश्वसनीय एवं अप्रमाणित पौधशाला की भरमार है जो ना तो कोई पौध तैयार करते हैं और न ही उन्नत प्रजाति के पौध की आपूर्ति कर पा रहे हैं, केवल आमदनी लिए पौध के विपणन में लगे हुए हैं। ऐसी परिस्थिति में उन्नत प्रजाति के पौध का उत्पादन विश्वसनीयता के साथ करने वाली पौधशाला की मांग अत्यधिक है। इस प्रकार की पौधशाला का प्रबंधन पौध सम्बंधित सभी अवयवों को ध्यान में रखकर किया जाता है। जिसमें उन्नत प्रजाति एवं उनकी प्रमाणिकता प्रमुख अवयव हैं।

पौधशाला (नर्सरी) एक ऐसी जगह या स्थान है जहाँ किसी भी प्रजाति के पौधों को अनुकूल वातावरण में उगाया जाता है जिससे वे अपने जीवन की प्रारम्भिक अवस्था का सफलतापूर्वक निर्वाह कर सकें। पौधशाला में नये पौधे लैंगिक या बीज से और अलैंगिक विधियों से तैयार किये जाते हैं। उसके बाद इन पौधों को कृषि भूमि में स्थानान्तरित किया जाता है। एक आदर्श नर्सरी तैयार करने के लिए निम्नलिखित कारक महत्वपूर्ण होते हैं।

जगह का चुनाव

पौधशाला की सफलता, उसकी मिट्टी और पानी की गुणवत्ता एवं आपूर्ति पर निर्भर करती है। पानी में लवणों की मात्रा कम होनी चाहिए और मिट्टी क्षारीय नहीं होनी चाहिए। बलुई दोमट मिट्टी जिसका पी.एच. मान 6.0-7.0 के बीच हो, और जिसमें जल भराव न हो सके, पौधशाला की स्थापना के लिए उपयुक्त मानी जाती हैं। पौधशाला मुख्य सड़क पर या सड़क से जुड़े ऐसे स्थान पर होनी चाहिए जहाँ यातायात, बिजली व संचार के साधन उपलब्ध हों।

मृदीय कारक

मृदा में लगभग 40 प्रतिशत, खनिज पदार्थ 10 प्रतिशत, कार्बनिक पदार्थ, 25 प्रतिशत जल तथा 25 प्रतिशत वायु होती है। मृदा के सभी कण आकार एवं आकृति में एक समान नहीं होते हैं। उनके आकार एवं व्यास पर आधारित मिट्टी तीन प्रकार की होती है- बुलुई, चिकनी तथा दोमट मृदा। पौधों में वृद्धि के लिए दोमट मृदा सबसे अच्छी होती है। जिसमें रेत एवं चिकनी मिट्टी के कणों का मिश्रण होता है। इसका कारण यह है कि इसमें वायु की मात्रा अधिक होती है और जल का वहन आसानी से होता है। इसमें जड़ें आसानी से प्रवेश कर सकती हैं और जल को अपने अन्दर रखने की क्षमता अधिक होती है। इसके अलावा पौधों की सामान्य वृद्धि के लिए अकार्बनिक लवणों की आवश्यकता होती है। पौधे जड़ों द्वारा भूमि से इन्हें अवशोषित करते हैं। पौधों की समुचित वृद्धि के लिए इन पदार्थों का एक निश्चित अनुपात में होना आवश्यक है। इन लवणों की कमी से पौधों के विकास में अनेक प्रकार की अनियमिताएँ पायी जाती हैं।

सिंचाई का उचित प्रबन्ध

पौधे अपना सम्पूर्ण जल मृदा से लेते हैं। विभिन्न प्रकार की मृदाओं में अलग-अलग अवस्था में जल की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। परन्तु पौधों की उपयुक्त वृद्धि के लिए समय-समय पर सिंचाई करते रहना चाहिए। बीजों के अंकुरण एवं पौधों की वृद्धि के लिए सिंचाई अत्यन्त आवश्यक है। जैसे ही कोई बीज जल शोषित करता है तो इसके भोज्य पदार्थ घुलित अवस्था में आ जाते हैं और इनमें एन्जाइम सक्रिय हो जाते हैं तथा अंकुरण प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। गर्मियों में पौधों को प्रतिदिन पानी की आवश्यकता होती है। इसके लिए प्रचुर मात्राा में पानी का प्रबन्ध होना आवश्यक है। अतः नर्सरी में नियमित अंतराल में सिंचाई करते रहना चाहिए।

पौधशाला में प्रकाश का समुचित प्रबन्धन

पौधशाला का निर्माण पूर्णतः छायादार स्थान पर नहीं करना चाहिए क्योंकि छायादार स्थान पर पौधों को पर्याप्त प्रकाश नहीं मिल पाता जिससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया प्रभावित होती

है। पौधशाला में पूर्ण प्रकाश, आंशिक छाया तथा पूर्ण छाया वाले स्थानों का होना आवश्यक होता है जिससे कि विभिन्न प्रकार के पौधे जैसे प्रकाश संवेदनशील व असंवेदनशील हों, को आवश्यकतानुसार अलग-अलग रखा जा सके। सामान्यतः ज्यादातर पौधों के लिए विशेषकर गर्मी के मौसम में आंशिक छायादार स्थान उपयुक्त होता है और छाया चाहने वाले पौधों को जालीधर नेटहाउस में रखना चाहिए। मानसून या सर्दी के मौसम में पौधों को ज्यादा छाया से बचाने के लिए कटाई-छँटाई करके या कृत्रिम प्रकाश देकर स्वस्थ रखते हैं। बीज से प्रवर्धित होने वाले पौधों की क्यारियां पूर्ण प्रकाश में खुले स्थान पर होनी चाहिए।

रोपण क्यारियों का निर्माण

सामान्यतः क्यारियाँ जमीन की सतह से 15 सें.मी. ऊँची बनाई जाती हैं जिससे उनमें जल भराव न हो सके। रोपण क्यारियों की चौड़ाई इतनी होनी चाहिए कि खरपतवार क्यारियों के दोनों ओर से सुगमता से निकाला जा सके। सामान्यतः क्यारियों की चौड़ाई 1.2 मीटर होती है परन्तु कभी-कभी यह 1.8 मीटर तक हो सकती है तथा लम्बाई आवश्यकतानुसार रखते हैं। क्यारियों की देखभाल तथा विभिन्न कार्य करने के लिए दो क्यारियों के बीच 60 सें.मी. खाली स्थान रखा जाता है।

पौधशाला की सुरक्षा

पौधशाला को चोरी तथा अन्य जानवरों से होने वाली हानि से बचाने के लिए पौधशाला के चारों तरफ दीवार या काँटेदार तार की बाड़ बनाना आवश्यक होता है।

उर्वरकों का प्रयोग

पौधों के समुचित वृद्धि एवं विकास के लिए सड़े गोबर की खाद एवं अच्छे उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। इसे मृदा के साथ ठीक से मिलाने से पौधों की जड़ों को पोषक तत्व आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं।

रास्ते एवं पगडंडियों का प्रबन्धन

पौधशाला में आने जाने व सामान की ढुलाई के लिए आवश्यकतानुसार समुचित जगहों पर रास्तों का होना आवश्यक है। ये रास्ते कच्चे या पक्के हो सकते हैं।

पौधशाला में आधारभूत संरचनाएं

बिल्डिंग ढांचे: एक अच्छी पौधशाला में कार्यालय, बिक्री काउन्टर, पैकिंग घर, स्टोर घर, औजार रखने का घर, माली के रहने के लिए घर, इत्यादि का होना अति आवश्यक है।

मातृ पौधों का स्थान: पौधों के प्रवर्धन के लिए उन्नत प्रजातियों के मातृ वृक्षों की आवश्यकता होती है। पौधशाला के मातृ स्थान में विश्वसनीय एवं प्रमाणित प्रजातियों को लगाया जाता है जिनका उपयोग सांकुर डाली के रूप में पौधों के प्रवर्धन के दौरान कलम बांधने में किया जाता है। किसी भी पौधशाला की विश्वसनीयता एवं प्रमाणिकता उसके मातृ स्थान पर निर्भर करती है। विश्वसनीयता के लिए मातृ स्थान लोगों को भी दिखाया जाता है।

पॉलीबैग भरने का स्थान: पौधशाला में मिट्टी, खाद, दवा इत्यादि का भंडारण तथा पॉलीबैग भरने व उनमें पौधे लगाने के लिए थोड़ा उठा हुआ पक्के फर्श का शेड् बनाया जाता है। यह शेड् तीन दिशाओं में खुला होता है। खुली दिशाओं में वर्षा से बचने के लिए एक मीटर ऊँची ईंट की दीवार बनायी जाती है।

पौध नमूना स्थान: बिक्री को प्रोत्साहित करने के लिए सभी तरह के पौधों व फल, फूल के आकर्षक प्रदर्शन के लिए एक समुचित स्थान की व्यवस्था होनी चाहिए जहाँ पर सभी पौधों व उनके उपलब्ध फल, फूल के अच्छे नमूने हर समय उपलब्ध हों ताकि आगन्तुक उन्हें देख कर पौध खरीद सकें।

शेड हाउस: यह एक ऐसी संरचना है, जो एग्रो नेट या कोई अन्य प्लास्टिक जाली से ढकी होती है जिससे सीमित मात्रा में आवश्यक धूप, नमी और हवा अन्दर जाती है। यह पौधे की वृद्धि के लिए उपयुक्त सूक्ष्म अनुकूल जलवायु बनाता है। इसे शेड नेट हाउस या नेट हाउस भी कहा जाता है। यह हवा, बारिश, ओले और ठंढ जैसे प्राकृतिक मौसम की गड़बड़ी से बचाता है और साथ ही साथ कीड़े एवं रोग से भी बचाता है। गर्मी के दिनों में ग्राफ्ट के उत्पादन और उसके मृत्यु दर को कम करने में सहायक होता है। यह नाजुक पौधों को शख्त बनाने में भी उपयोग किया जाता है।

हॉट बेड, कोल्ड बेड या कोल्ड फ्रेम, और सन बॉक्स

हॉट बेड, कोल्ड बेड और सन बॉक्स अपेक्षाकृत सस्ती, सरल संरचनाएं हैं जो ठंड के मौसम की फसल को आगत उगाने के लिए बसंत और ठंड के मौसम के शुरूआती महीनों में ही अनुकूल वातावरण प्रदान करती हैं। कोल्ड बेड और सन बॉक्स में कोई बाहरी ऊर्जा की आवश्यकता नहीं होती है। ये ऊर्जा के

लिए पूर्णतः सूर्य पर निर्भर होते हैं। लेकिन हॉट बेड में बाहर से ऊर्जा दी जाती है। इसमें बेड को गरम करने के लिए इलेक्ट्रिक हीटिंग केबल, भाप प्रवाहित करने वाले पाइप और पौधों की जड़ों के नीचे दबी हुई ताजी गोबर एवं पुआल की खाद का उपयोग किया जाता है। फूलों और सब्जियों के पौध के लिए इन संरचनाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। यह एक छोटा, कम ऊँचाई का ढांचा है। हॉट बेड को बीज से पौध उगाने या मुलायम कलमों में जड़ों के विकास के लिये इस्तेमाल करते हैं। जबकि कोल्ड फ्रेम को छोटे नाजुक पौधों को बाहर के वातावरण के प्रति सहनशील बनाने के लिए इस्तेमाल करते हैं।

लैथघर

लैथघर पौधों को छाया प्रदान करने तथा गर्मियों में प्रकाश तीव्रता व अधिक तापमान से बचाने के उपयोग में लाया जाता है। लैथघर को ढकने के लिये शेडिग नेट का प्रयोग किया जाता हैं। लैथघर में पानी की भी आवश्यकता कम होती है, इसीलिए कभी-कभी सिर्फ बिक्री योग्य पौधों को भी रखने में इसका उपयोग किया जाता हैं।

पौधशाला में पौध तैयार करना

पौधशाला में दो विधियों से पौध तैयार किए जाते हैं :

अ. लैंगिक विधिः इसमें बीज द्वारा पौध तैयार किये जाते हैं

ब. अलैंगिक विधिः इसमें निम्न प्रमुख विधियों द्वारा पौध तैयार किये जाते हैं

ग्राफ्टिंग एवं बडिंग या कलिकायन विधिः इसमें पहले बीज द्वारा पौध का मूलबृन्त तैयार किया जाता है और जब वह पेन्सिल के ब्यास के बराबर हो जाता है तो उस पर सांकुर डाली की कलम व सांकुर कलिका बांध दी जाती है जो आगे चलकर सांकुर प्रजाति की नयी पौध बनती है।

कर्तन विधिः जब पौधा सुशुप्तावस्था में होता है व पौधों की पत्तियाँ गिर जाती हैं। उस समय पेंसिल या उससे थोड़ी अधिक मोटी आकार की कटिंग लेनी चाहिए। प्रत्येक कटिंग की लम्बाई लगभग 15-20 से.मी. एवं प्रत्येक कटिंग पर कम-से-कम 2-3 कलिकायें होनी चाहिये। इसके बाद कटिंग का रोपण क्यारियों में लगभग बराबर दूरी पर कर दिया जाता है। इससे इनकी वृद्धि अच्छी तथा जड़ें भी अच्छी तरह विकसित हो जाती हैं। कटिंग को नर्सरी में तब तक रखा जाता है जब तक कि उनमें जड़ें पूरी तरह विकसित नहीं हो जाती उसके बाद उन्हें अन्य क्षेत्रों में स्थानान्तरित किया जाता है।

गूटी या लेयरिंग विधिः इस विधि में वृक्ष की शाखा में गूटी बनायी जाती है और जब उसमें जड़ दिखने लगती है तो उसे वृक्ष से काट कर अलग कर लेते हैं तथा जड़ विकास के लिए क्यारियों में लगा दिया जाता है। क्यारियों में तब तक रखा जाता है जब तक कि उनमें जड़ें पूरी तरह विकसित नहीं हो जाती उसके बाद उन्हें अन्य क्षेत्रों में स्थानान्तरित किया जाता है।

पौध तैयार करने में सावधानियां

- भूमि को फफूंद रहित करने के लिए फॉरमेल्डिहाइड/फॉरमालिन रसायन से उपचार करना आवश्यक है जिसका 25 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 5 लीटर फॉरमालिन विलयन प्रति वर्ग मीटर की दर से पौधशाला के भूमि पर अच्छी तरह छिड़काव कर भिगोया जाता है। तत्पश्चात् इस स्थान को पॉलीथीन चादर से अच्छी तरह ढक देना चाहिये। लगभग एक सप्ताह पश्चात् पॉलीथीन चादर हटाकर इस जगह की अच्छी तरह 3-4 बार जुताई व खुदाई कर 7-10 दिनों तक खुला छोड़ दें जिससे रसायन का असर समाप्त हो जाए। इसके पश्चात् भूमि को अच्छी तरह भुरभुरी बनाएं तथा लगभग उपचार के 15 दिन पश्चात् बुवाई के लिए तैयार करें। यह उपचार डैंपिंग ऑफ नामक बीमारी की रोकथाम में सहायता करेगा।
- बीज को बोने से पूर्व फफूँदनाशक रसायन से सूखा उपचार कर लेना चाहिए (2-3 ग्राम कैप्टान/बाविस्टीन इत्यादि फफूंदनाशक या ट्राइकोडर्मा हार्जिएनम प्रति किलोग्राम बीज)। इससे डैपिंग ऑफ नाम के बीमारी का प्रकोप कम होगा।
- बीज को पंक्तियों में लगाकर गोबर की खाद या मिट्टी की पतली तह से ढक दें तथा जब तक पौधे स्थापित न हो जायें, प्रतिदिन हल्की सिंचाई करें।
- बीजाई के तुरंत बाद क्यारी को सूखी घास से ढक दें और अंकुरण होने पर घास हटा दें।
- डैपिंग ऑफ रोग के प्रकट होने की आशंका में पौधशाला में डायथेन एम-45, 2 ग्राम/लीटर या

बाविस्टीन, 2 ग्राम/लीटर की दर से पानी में घोल कर सिंचाई करें।

- पौध उखाड़ने से 3-4 दिन पूर्व सिंचाई न करें परन्तु पौध उखाड़ने वाले दिन सिंचाई करने के बाद ही पौध को उखाड़ें। रोपाई से पहले पौधों की डायथेन एम-45 2 ग्राम/लीटर या बाविस्टीन 2 ग्राम/लीटर पानी के घोल में कुछ समय डुबोए रखें।
- स्वस्थ पौधों का ही रोपण दोपहर बाद करना चाहिए।

पौधशाला के मुख्य कीड़े

स्केल: इनकी रोकथाम रोगोर एवं मेटासिसटॉक्स 0.05 प्रतिशत का एक छिड़काव 15 दिन के अन्तराल में करके की जा सकती है।

मिली बग: इनकी रोकथाम के लिए इसके कीड़ों को इकटठा करके मार देना चाहिए। भूमि रेकिंग से प्युपा को मार सकते हैं जो कि दिसम्बर तथा जनवरी में की जाती है।

माइट: वेटैबिल सल्पफर 0.2 प्रतिशत का 15 दिनों के अन्तराल पर छिड़काव करके, इसकी रोकथाम की जा सकती है।

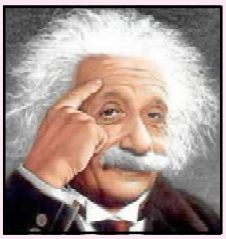

''आने वाली पीढ़ियां शायद ही यह विश्वास करें कि हाड़-मांस और रक्त से बना एक ऐसा व्यक्ति भी कभी धरती पर आया था।''

अल्बर्ट आइंस्टीन

लीची में आकस्मिक पुष्पन वाले आनुवांशिक का चयन

नारायण लाल, आलोक कुमार, अभय कुमार, इवनिंग स्टोन मार्बो एवं विशाल नाथ

भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर (बिहार)

लीची एक सदाबहार फल वृक्ष है जो कि एक विशेष जलवायु में ही अच्छी पैदावार देता है। यही कारण है कि उसकी व्यवसायिक खेती चीन, थाईलैण्ड, ताइवान, वियतनाम, भारत व अन्य देशों में की जाती है और भारत में इसकी खेती बिहार, त्रिपुरा, असम, पश्चिम बंगाल, झारखण्ड, पंजाब, उत्तराखण्ड, छत्तीसगढ़ आदि राज्यों में की जाती है। इसके फल अपने मनमोहक सुगंधयुक्त स्वाद, आकर्षक रंग एवं पौष्टिक गुणों के लिए मशहूर है। भारत में देश का सर्वोत्तम लीची फल का उत्पादन उत्तर बिहार में होता है। यह फल मुख्य रूप से ग्रीष्म ऋतु के समय में बाजार में आती है और फल के स्वाद के कारण इसकी मांग बनी रहती है। लोकप्रियता के आधार पर इस रंगीली, रसभरी लीची को ''फलों की रानी'' कहा जाता है लीची का क्षेत्र देश के विभिन्न भागों में भी बढ़ने लगा है। इसकी खेती पहले उत्तर-पूर्वी भारत तक ही सीमित थी लेकिन अब इसकी खेती दक्षिण भारत में भी होने लगी है। भारत उत्पादन में चीन के बाद दूसरे नंबर पर है। भारत में गुणवत्तायुक्त उत्पादन व उत्पादकता के कारण इसकी घरेलू वा अंतर्राष्ट्रीय बाजार में अच्छी मांग है।

लीची फल का आगमन भारत में चीन से हुआ है इसीलिए उसमें जैविक विविधता बहुत कम होने के कारण इसका अनुवांशिक गुण बहुत ही संकीर्ण है जिसके कारण से किस्मों में ज्यादा विभिन्नता देखने को नहीं मिलती है। लीची में विविधता को बढ़ाने के लिए हमने बीजू पौधों से 82 अलग-अलग प्रकार के पौधों का चयन किया और उसके पौधे ले जाकर खेतों में 2014 में लगाया। इनमें से एक चयन NRCL-29 में पुष्पन तीसरे वर्ष 2017 में प्रारंभ हो गया। पौधा मध्यम वृद्धि वाला तथा तना थोड़ा खुरदुरा वाला पाया गया है। पौधा का फैलाव वाला कम (चित्र 1) मध्यम शाखाओं और अनियमित स्वरूप वाला है, पौधा कम ऊँचाई वाला व शाखायें झुकाव वाली है। नई पत्ती का रंग हल्का पीला तथा पुराने पत्ती का रंग हल्का हरा है। एक पत्ती में 6-8 पत्रक होता है जो कि एक दूसरे के विपरीत व्यवस्थित है। पत्ती का आकार दीर्घ वृत्तीय, सिरा बहुत ही नुकीला एवं आधार तला फन्नी के आकार का है। पुष्पगुच्छ की लंबाई 20-30 सेमी. तथा चौड़ाई 8-15 सेमी. (चित्र 1) देखा गया है। पुष्प गुच्छ गुलदस्तों जैसा आकार वाला जिसमें एक ही जगह से 5-10 की संख्या में पुष्पगुच्छ निकला हुआ है। एक पुष्पगुच्छ में कुल पुष्पों की संख्या 2000-3000 के बीच पायी गयी है जिनमें नर-मादा-नर पाया गया है। फलों का आकार अण्डाकार है, फल की लम्बाई 30-32 मिमी., चौड़ाई 22-26 मिमी. एवं फलों का वनज 10-15 ग्राम तक पाया जाता है। एक पुष्पगुच्छ में 4-5 फल तुड़ाई के समय देखा गया है। (चित्र 3) फलों का रंग लाल है जो कि एन्थोसाइनिन (94.62 मिग्रा/100 ग्रा.) का एक अच्छा स्रोत है (चित्र 4) बीज का रंग हल्का भूरा तथा वनज 2.30-2.70 ग्राम पाया गया है। पहले वर्ष 2017 में 0.9 किग्रा. तथा दूसरे वर्ष 2018 में 2.1 किग्रा. फलों का उत्पादन देखा गया है। चुने गये 82 पौधों में से यह पहला पौधा था जिसमें सबसे पहले पुष्पन व फलन हुआ। फलों का स्वाद मीठा (15.84) व कम अम्लता वाला है और लगातार तीन वर्ष तक पुष्पन व फलन देता रहा है।

चित्र-1: अनुवांशिक NRCL-29 में अच्छी पुष्पन

चित्र-2: मंजर में फलों की संख्या

चित्र-3: फल का आकार एवं रंग

आप मुझे बेड़ियों से जकड़ सकते हैं, यातना भी दे सकते हैं, यहाँ तक की आप इस शरीर को खत्म भी कर सकते हैं, लेकिन आप कदापि मेरे विचार कैद नहीं कर सकते।

महात्मा गाँधी

लौंगन एक सशक्त फल

नारायण लाल, आलोक कुमार, अभय कुमार, इवनिंग स्टोन मार्बो एवं विशाल नाथ

भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर (बिहार)

लौंगन एक नया फल वृक्ष है जो कि ड्रेगन आई के नाम से भी जाना जाता है। इसका वैज्ञानिक नाम डाइमोकारपस लोंगन है जो कि सैपेण्डेसी परिवार का एक सदस्य है। इसका वृक्ष लीची जैसा ही होता है और इसका फल लीची के फल आने के एक दो माह बाद आता है। कई लोग इसे लीची भी समझकर भ्रमित हो जाते हैं। फल गुच्छे में आता है और फल का वजन 10-12 ग्राम होता है। फलों का रंग हल्का पीला-भूरा होता है जो कि आलू भूखारा जैसा लगता है। गूदा सफेद व पारदर्शी एवं मीठा होता है उसका बीज गोल, चमकदार काला रंग का होता है जो कि गूदे से घिरा रहता है। फलों का छिलका चिकना होता है जबकि लीची का खुरदुरा होता है। इस फल की विशेषता यह है कि यह फल लीची के समाप्त हो जाने के बाद अगस्त के माह में पकता है। इस फल में लीची के समान जलन व फटन की समस्या नहीं होती है। इस फसल में उत्पादकता की बहुत संभावनाए है इसकी फल को ताजा फलों के रूप में खाने में उपयोग किया जाता है। लोंगन फल थायमिन, राइबोफ्लेवीन, नीयासिन, विटामिन सी, प्रोटीन, लौह, मैगनिशियम, फास्फोरस, पोटैशियम, ताँबा, मैगनीज, वसा, कार्बोहाइड्रेट एवं ऊर्जा का अच्छा स्रोत है। ग्लूकोज व फ्रक्टोज की मात्रा अधिक व अम्ल की मात्रा कम होती है जिससे फलों में मिठास लीची की तुलना में अधिक होती है।

स्थिति

यह लीची के साथ-साथ व्यवसायिक रूप से चाइना, थाइलैण्ड एवं वियतनाम में उगाया जाता है। भारत के उत्तर बिहार में इसको देखा जा सकता है। राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र पर लोंगन में भी कार्य प्रारम्भ हुआ है। लोंगन को अन्य राज्यों जैसे हिमाचल प्रदेश, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल एवं तमिलनाडु में भी उगाया जाता है। यद्यपि लोंगन के उपर कोई ध्यान नहीं दिया गया जबकि इसका आगमन भारत में लीची के साथ ही हुआ है क्योंकि झारखण्ड, बिहार, पश्चिम बंगाल एवं तमिलनाडु में 50 वर्ष के पुराने पौधे पाये गये हैं। फलों का वजन बहुत कम तथा रंग (हल्का पीला) आकर्षित करने वाला न होने के कारण इसके उत्पादन में ध्यान नहीं दिया गया लेकिन इसकी उत्पादन क्षमता बहुत होने के कारण अब इस पर भी संभावनाएं तलाश की जा रही है। इस फल में किसी भी प्रकार का जलन, फटन व कीट बीमारी का प्रकोप नहीं देखा गया है। उचित जल व पोषक तत्व के प्रबंधन से इसके आकार व गुण को और भी बढ़ाया जा सकता है। जब लीची में पुष्पन खत्म हो जाती है तब लोंगन में पुष्पन आरंभ होता है और यह मधुमक्खियों के लिए नेक्टर का एक अच्छा स्रोत माना गया है। लोंगन में फलन जुलाई-अगस्त में आता है। मधुमक्खियों की वजह से इसके उत्पादन में वृद्धि पायी गयी है तथा शहद भी प्राप्त हुआ है जो कि अच्छी गुणवत्ता वाली होती है। प्रसंस्कृत उद्योगों में इसकी बहुत संभावनाएं है एवं इससे अनेक उत्पाद जैसे डिब्बाबंद स्क्वैश तथा पेय पदार्थ बनाया जा सकता है।

उत्पादन

लोंगन को 8×8 मी. की दूरी पर लगाना चाहिए और तुड़ाई के पश्चात् हल्की कटाई-छँटाई की जानी चाहिए। वर्षा के प्रारंभ होते ही 60×60×60 सेमी. आकार के खुदे गड्ढे में लगाना चाहिए। गड्ढे की तैयारी पौधे लगाने के दो सप्ताह पहले कर लेना चाहिए। नये पौधों की देख रेख प्रारंभ में तीन-चार सालों तक अच्छे से करना चाहिए। लोंगन में फलन तीन-चार साल से प्रारंभ हो जाता है। लोंगन फल वृक्ष पर ही पकता है। जब फल तुड़ाई के लायक हो जाता है तब छिलके का रंग हरे से हल्का पीला व लकड़ी के रंग का हो जाता है और गूदे में शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है। दस साल पुराने पौधे से लगभग 20-30 किग्रा. फल प्राप्त होता है।

उपयोग

लोंगन का उपयोग पेट दर्द, अनिद्रा, शब्द स्मृति भ्रंग एवं जलशोध में किया जाता है। सूखे गुदे का उपयोग टानिक के रूप में किया जाता है एवं नसों की दुर्बलता व शब्द स्मृति भ्रंश को दूर करने में किया जाता है। इसके बीज को सर्प के काटे हुए स्थान पर दबाने से यह जहर को पूरी तरह से खींच लेता है। इसके साथ-साथ बीज खून के बहाव को भी रोकने में मदद करता है। बीज में सैपानीन होने के कारण इसका उपयोग बालों में केश मार्जक के रूप में किया जाता है।

सरांश

बिहार व आस-पास के राज्यों में लीची के साथ-साथ लोंगन को भी लगाया जा सकता है और इससे फलों के उत्पादन के साथ-साथ शहद भी प्राप्त किया ता सकता है।

फलोत्पादन में पादप हारमोन के प्रयोग से लाभ

डी.के. सिंह[1] एवं प्रणव पाण्डेय[2]

[1]सम्बद्ध प्राध्यापक-सह-वरीय वैज्ञानिक
[2]उद्यान विज्ञान विभाग, वीर कुँवर सिंह कृषि महाविद्यालय, डुमरॉव, (बक्सर), बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

फलों के उत्पादन में पादप हार्मोन एवं पादप वृद्धि नियामकों की भूमिका प्राथमिक स्तर से लेकर तुड़ाई उपरांत तक है जैसे बीज के अंकुरण में, पौध तैयारी में, प्रवर्धन में, वृक्ष के आकर एवं बढ़वार में, फल के आकर में, फल-फूल लगने तथा गिरने में, और फल के तुड़ाई उपरान्त प्रौद्योगिकी में आदि। पादप हार्मोन एवं वृद्धि नियामक फसल की उत्पदकता को भी प्रभावित करते हैं। पादप कार्यिकी सम्बन्धी समस्यओं के निदान में इनकी अहम् भूमिका होती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि फल फसलों के उत्पादन प्रक्रिया में पादप हार्मोन एवं पादप वृद्धि नियामकों का प्रमुख स्थान है।

पादप हारमोन का फलोत्पादन में बहुत महत्व हैं। फल के पौधों की वृद्धि तथा उनका विकास अन्तर्जनित हारमोन के प्रकार, मात्रा एवं उनके आपसी संतुलन के ऊपर निर्भर होता है। हारमोन की प्रक्रिया को कृत्रिम पादप वृद्धि नियंत्रकों द्वारा आगे बढ़ाया जा सकता है अथवा बदला जा सकता है।

पादप हारमोन एक कार्बनिक यौगिक होते है जो कि पौधे के एक भाग में प्राकृतिक रूप से बनते हैं और परिवहन उपरांत दूसरे भाग में बहुत ही कम मात्रा में पहुँचकर पादप वृद्धि एवं उनके उपापचयी क्रियाओं की प्रभावित एवं नियंत्रित करते हैं। पादप हारमोन पौधों की क्रियाओं, सांद्रता व अंग जिस पर क्रियाएँ होती है के अनुसार विभिन्न प्रकार के प्रभाव दिखाते हैं जैसे वृद्धि नियंत्रण, पुष्पन, फलन आदि।

वृद्धि नियामक (पोषक तत्वों के अलावा) यौगिक होते हैं जो कम सांद्रता में ही पादप वृद्धि व विकास को बढ़ाते, रोकते या गुणवत्ता पूर्वक सुधार करते हैं। प्रायोगिक तौर पर पादप नियामक प्राकृतिक व सिंथेटिक यौगिक होते हैं। सिंथेटिक वृद्धि नियंत्रक अपना प्रभाव सामान्यतया पादप हारमोन के स्तर पर बदलाव लाकर अथवा स्वयं ही पादप वृद्धि व विकास को वांछित दिशा में अधिक लाभ के लिए परिवर्तित करते हैं।

पादप वृद्धि नियामकों को मुख्यतः पाँच भागों में बाटा गया हैं, जो कि इस प्रकार हैं:

(1) ऑक्सिन (2) जिब्रेलिन (3) साइटोकाइनिन (4) इथिलिन तथा (5) वृद्धि अवरोधक जैसे एवसिसिक एसिड, साइकोसेल तथा सैड महत्वपूर्ण हैं।

(1) ऑक्सिन

ऑक्सिन शाखा के शीर्ष भाग में नई पत्तियों में बनता है, फिर वहाँ से नीचे की तरफ एक कोशिका से दूसरे कोशिका में जहाँ पर इसकी जरूरत होती है चला जाता है। ऑक्सिन के कई वृद्धि नियंत्रक कार्य होते हैं जैसे कि पौधे में प्रकाश अनवर्तनी दिशा प्रदान करना, पौधों में गुरूत्वानुवीन गति प्रदान करना तथा शीर्ष भाग को प्रमुखता से बढ़ाना।

आम, नींबू, सेव जैसे फल वृक्षों में पत्तियाँ, फल व फूल अपना कार्य पूर्ण रूप से करने से पूर्व ही गिर जाते हैं। ऐसा फल वृक्षों के पुष्पवृन्त व पत्तियों की निचले सतह की ओर एक विलगन परत वन जाने के कारण होता है। ऑक्सिन का व्यवहार इस विलगन को रोकने के लिए तथा अन्य कार्य जैसे चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार का नाश, फल वृक्षों का प्रवर्धन कलम विधि द्वारा करने में, बीज रहित फल तैयार करने में, फलों के गिरने पर नियंत्रण करने में किया जाता है। अधिकांश रूप से प्रयुक्त होने वाले ऑक्सिन में इंडोल एसिटिक एसिड (I.A.A.) इंडोल व्यूटारिक एसिड (I.B.A.) नेपथालिन एसिटिक एसिड (N.A.A.), 2,4-D तथा 2,4,5-टी आदि हैं।

ऑक्सिन का प्रायोगिक व्यवहार

i. पौध प्रवर्धनः फल वृक्षों की पौध प्रवर्धन में विभिन्न प्रकार से ऑक्सिन की अलग-अलग सांद्रता का व्यवहार किया जाता है।
   - शीघ्र जंक निकलने के लिए
   - अंगूर की शाखा से कलम बनाने के लिए 75 पी.पी.

एम., आई.ए.ए. के द्वारा अपचार।

- नींबू की शाखा से कलम बनाने के लिए 1000 पी. पी.एम.एन.ए.ए. द्वारा शाखा का उपचार।
- लीची शाखा पर गूटी द्वारा कलम बनाने में 5000 पी. पी.एम.आई.बी.ए. द्वारा उपचार।
- मीठे नींबू की शाखा द्वारा कलम करने में ऑक्सिन का व्यवहार।

ii. चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार नाश करने में ऑक्सिन का व्यवहार

- 750 ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से 750 लीटर पानी 2, 4-D का व्यवहार फल के बगीचे में करने से खरपतवार नियंत्रण में लाभ होता है।

iii. फल गिरने से रोकने में ऑक्सिन का व्यवहार

- 2, 4-D का व्यवहार 10 पी. पी.एम. के सांन्द्रता पर छिड़काव करने से नागपुर संतरा तथा आम में फल गिरना कम हो जाता है।
- एन.ए.ए. का व्यवहार 50 पी. पी.एम. के सांन्द्रता पर छिड़काव करने पर भी आम में फल गिरना कम हो जाता है।
- एन.ए.ए. का व्यवहार 5 पी. पी.एम. की सांन्द्रता पर छिड़काव करने से सेब में फल धारण की मात्रा बढ़ जाती है।

iv. अच्छे पुष्पन के लिए ऑक्सिन का व्यवहार:

- एन.ए.ए. का व्यवहार 10-15 पी.पी.एम. के सांन्द्रता पर छिड़काव से अनन्नास में एक साथ फूल आते हैं।
- एन.ए.ए. का व्यवहार 500-600 पी.पी.एम. की सान्द्रता पर करने से अमरूद में इच्छानुसर पुष्पन नियंत्रित किया जा सकता है।

(2) जिब्रेलिन (जी.ए.)

जिब्रेलिन पौधे में विभिन्न प्रकार की वृद्धि एवं विकास क्रियाओं में भाग लेते हैं। उदाहारण के तौर पर बीज में पोषक तत्वों का परिवहन, सुसुप्त बीज का अंकुरण, फूल व फल उत्पन्न करना, फल के आकार में वृद्धि करना, अनिशेचन की दशा में भी फल बनाना, बीज रहित फल बनने में सहायता करना, विभिन्न इंजाइम के कार्य में सहयोग करना इत्यादि।

ऐसे पौधे जिन्हें पुष्पण के लिए कम तापक्रम व दीर्घ प्रकाश काल की आवश्यकता होती है। वहाँ अनुकूल तापक्रम व दीर्घ प्रकाश काल के स्थान पर जिब्रेलिन छिड़कने पर उनमें पुष्पन हो जाता है तथा फलन भी अच्छी होती है। फलदार पौधों में जिब्रेलिन का बहुत महत्व है। जिब्रेलिन ने बीज रहित अंगूर की खेती में व्यावसायिक क्रान्ति लायी है। इसका उपयोग अंगूर के फल के बनने, फलों को कम करने, फलों के आकार व लंबाई बढ़ाने, बीज रहित फल बनाने एवं पकने की अवधि कम व ज्यादा करने में किया जा रहा है। संतरे में इसका प्रयोग विलगन रोकने व भंडारण क्षमता बढ़ाने में करते हैं।

जिब्रेलिन का प्रायोगिक व्यवहार

i. **अंकुरण वृद्धि के लिए जिब्रेलिन (जिब्रेलिक एसिड) का व्यवहार**

- जिब्रेलिक एसिड की 200 पी.पी.एम. की सांन्द्रता वाले घोल में पपीता के बीज को 12-15 घंटे भिगोने के बाद बोने से अंकुरण में वृद्धि होती है।
- जिब्रेलिक एसिड की 100-500 पी.पी.एम. की सांन्द्रता वाले घोल में अंगूर के बीज को रात भर भिगोने के बाद बोने से अंकुरण में वृद्धि होती है।

ii. **फल धारण के लिए जिब्रेलिक एसिड का व्यवहार**

- जिब्रेलिक एसिड की 40 पी. पी.एम. की सान्द्रता वाले घोल का छिड़काव अंगूर में करने से फल धारण क्षमता बढ़ जाती है।
- नींबू बर्गीय फल वृक्षों में जिब्रेलिक एसिड की 50 पी. पी.एम. की सान्द्रता के घोल का छिड़काव करने से फल धारण क्षमता बढ़ जाती है।
- जिब्रेलिक एसिड के 15-30 पी.पी.एम. की सान्द्रता के घोल का अमरूद में जनवरी माह में एक या दो बार करने से फलन में बढ़ोत्तरी होती है।

iii. **लिंग परिवर्त्तन के लिए जिब्रेलिक एसिड का व्यवहार**

- जिब्रेलिक एसिड की 50 पी. पी.एम. की सान्द्रता के घोल का छिड़काव पपीता के पौधों में करने से मादा फूलों की संख्या में बढ़ोत्तरी होती है।

iv. **भंडारण आयु बढ़ाने के लिए जिब्रेलिक एसिड का व्यवहार**

- जिब्रेलिक एसिड की 200 पी.पी.एम. सान्द्रता के घोल का छिड़काव अमरूद के हरे फलों पर करने से भंडारण आयु बढ़ जाती है।

(3) साइटोकाइनिन का प्रायोगिक व्यवहार

- ऑक्सिन के साथ विभिन्न अनुपात में मिलकर भिन्न पादप क्रियाओं में भाग लेता है जैसे साइटोकाइनिन और कम ऑक्सिन के अनुपात में तने की वृद्धि होती है तथा कम साइटोकाइनिन व ज्यादा ऑक्सिन के अनुपात में जड़ों की वृद्धि होती है।
- इसका अत्यधिक व्यवहार सूक्ष्म पौध प्रबंधन के लिए मिडियम बनाने में होता है।
- इसका पौधे के अंदर एक स्थान से दूसरे स्थान पर परिवहन आसानी से नहीं होता है।

(4) इथिलिन का प्रायोगिक व्यवहार

- यह हारमोन गैस के रूप में होता है। यह आम और अनन्नास में पुष्पन की क्रिया को प्रदान करता हैं।
- फलों को पकाने के लिए इसका महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में आम, केला आदि को पकाने के लिए इथिलिन का प्रयोग होता है। इसके उपचार से पके फलों का रंग, रूप व सुगंध प्राकृतिक रूप से पके फलों जैसा होता है।
- इथिलिन बनाने वाले बहुत से रसायन होते हैं जिसमें इथरेल या इथफोन मुख्य हैं।
- इथरेल के 1000-3000 पी.पी.एम. सान्द्रता वाले घोल में केले के फल को डुबाने से फल जल्दी पकता है।
- इथरेल की 2000 पी.पी.एम. की सान्द्रता वाले घोल में पपीता के फल को डुबाने से फल जल्दी पकता है।
- इथरेल की 250 पी.पी.एम. की सान्द्रता वाले घोल का छिड़काव लीची के फलों पर करने से छिलके के रंग में सुधार होता है।

(5) वृद्धि रोधक हारमोन का व्यवहार

- आज कल फल वृक्षों में वृद्धि नियंत्रण जैसे तने की लंबाई, पत्ती की चौड़ाई तथा पुष्पन वृद्धि के लिए वृद्धि रोधक हारमोन का व्यवहार हो रहा है।
- ये हारमोन ऑक्सिन तथा जिब्रेलिन के विपरीत कार्य करते हैं।
- इसमें मुख्यतः साइकोसिल तथा एलार का व्यवहार ज्यादा होता है।
- साइकोसिल की 100 पी.पी.एम. की सान्द्रता का छिड़काव नींबू के पौधों पर करने से अत्यधिक पुष्पन होता है।
- एलार की 2000-3000 पी.पी.एम. की सान्द्रता का घोल छोटे फलों पर करने से फल विरलन करके अनार में फलन में बढ़ोत्तरी होती है।

(i) SADH (सैध)

इसको अन्य नामों जैसे एलार, केलार, बी-नाइन तथा डामिनीजोल के नाम से भी जाना जाता है। इसका प्रयोग पौधे के अन्दर बन रहे ऑक्सिन एवं जिब्रेलिन के प्रभाव को रोकता है। इसका प्रयोग तने की लम्बाई एवं पौधे की ऊँचाई को कम रखते हुए अच्छे गुणवक्ता के फूल तैयार करता है उदाहरण के तौर पर गुलदौदी, तुलिप इत्यादि में इसका प्रयोग होता है। फल वृक्षों में इसका प्रयोग फल की परिपक्वता एवं अच्छी गुणवता को नियंत्रित करता है। इसका प्रयोग फल वृक्षों में सुखा एवं अत्यधिक ठंड के प्रति प्रतिरोधी क्षमता बढ़ाता है एवं फूल तथा फल को गिरने से बचाता है। इसकी प्रायोगिक व्यवहार की मात्रा 1000-2000 पी.पी.एम. है तथा यह अम्ल एवं क्षार में घुलनशील है। इसके 1000-2000 पी.पी.एम. की मात्रा का प्रयोग खजूर में करने से फल की परिपक्वता अवधि कम होती है। पपीता में 500 पी.पी.एम. की मात्रा का प्रयोग मादा फूलों की संख्या को बढ़ाता है। सेव में 50 पी.पी.एम. के मात्रा का प्रयोग फल को गिरने से रोकता है।

(ii) Cycocel साइकोसेल (क्लोरोकोलीन क्लोराइड)

इसका नाम 2-क्लोरोइथाइल ट्राइ मिथाइल अमोनियम क्लोराइड है। यह

जिब्रेलिन के प्रभाव को कम करता है। इसकी प्रायोगिक मात्रा 1000-3000 पी. पी.एम. है। यह जल में घुलनशील है। साइकोसेल की 3000 पी.पी.एम. की मात्रा का प्रयोग अंगूर में 15 पशी की अवस्था में करने से उत्पादन में वृद्धि होती है। साइकोसेल की 500 पी.पी. एम. की मात्रा का प्रयोग अमरूद में करने से उत्पादन में वृद्धि होती है।

(iii) ABA (एवसिसिक एसिक)

यह एक वृद्धि रोधक हार्मोन है। इसे डॉरमीन भी कहा जाता हैं यह पौधे के जड़, फूल, पत्ते एवं तनों में बनते है। यह पत्तियों के रंध्र को बन्द करता है एवं पानी के क्षय को बचाता है।

- यह फल पकने की प्रक्रिया में अवरोध पैदा करता है।
- यह बीज के अंकुरण की क्षमता को कम करता है।
- यह काइनेटिन के निर्माण में अवरोध पैदा करता है।
- यह कोशिका विभाजन को रोकता है।
- नई कलियों में स्तंभन का विकास करता है।
- यह तने की लम्बाई के विकास में अवरोध पैदा करता है।
- यह जड़ के विकास को बढ़ाता है।

एवसिसिक एसिड की 1500-3000 की मात्रा का प्रयोग सेव, चेरी तथा ओलिव फल में करने से पत्तियों एवं छोटे फलों में विलगन पैदा करता है।

(iv) Maleic Hydrazide (मैलिक हाइड्राजाइड)

मैलिक हाइड्राजाइड एक पानी में घुलनशील, ठोस कृत्रिम पौध हार्मोन है जो पौधे के विभिन्न तरह के वृद्धि को रोकता है। पौधे के अत्यधिक विकास को रोकने में इसका व्यवहार होता है। इसकी प्रायोगिक मात्रा 1000-2000 पी. पी.एम. है। मौलिक हाइड्राजाइड की 500-1000 पी.पी.एम. की मात्रा का प्रयोग फल तोड़ाई उपरांत करने से आम में पकने की क्रिया में देरी होती है। इसकी 1000-3000 पी.पी.एम. की मात्रा का प्रयोग सेव, अंगूर, स्ट्रॉबेरी इत्यादि में करने से फूल आने में देरी होती है।

पी.पी.एम. बनाने की विधि

$$\text{पी.पी.एम.} = \frac{\text{पादप हारमोन का भार (मिली ग्रा0)}}{\text{वांछित वृद्धि घोल की मात्रा (मिली)}} = 1000$$

- पादप हारमोन का व्यवहार अवलेह के रूप में, पाउडर के रूप में, ऐरोसोल के रूप में तथा वाष्प के रूप में कर सकते है।
- पादप वृद्धि नियामक के लिए विलायक पदार्थ :

ऑक्सिन	आइ.ए.ए.	इथाइल अल्कोहल या
	आई.बी.ए.	इथेनॉल या मिथेनॉल
	एन.ए.ए.	सोडियम हाईड्रक्साइड
	2-4, डी, 2-4-5,	शुद्ध जल
जिब्रेलिन	जिब्रेलिक अम्ल	इथेनॉल या मिथेनॉल
इथिलिन	इथरेल, इथेफॉन	शुद्ध जल

- पादप हारमोन चूँकि अम्लीय गुणों से भरपूर होते है अतः इसके व्यवहार से पहले 0.4 लाइम मिला कर इसकी अम्लीय गुण को नष्ट कर देना अत्यंत आवश्यक।
- सभी कही गई बातों को समझ कर पादप हारमोन का व्यवहार फल वृक्षों में न्यायोचित प्रयोग करने से अत्यधिक एवं गुणवत्ता युक्त फलन प्राप्त की जा सकती है।

''इस मिट्टी में कुछ अनूठा है, जो कई बाधाओं के बावजूद हमेशा महान आत्माओं का निवास रहा हैं।''

सरदार वल्लभ भाई पटेल

उत्तर भारत में स्ट्रॉबेरी की खेती से किसानों की आय में वृद्धि

ज्योति सिंह[1], प्रियांशु सिंह[2], तेजबल सिंह[3] एवं नारायन लाल[4]

[1]शोध छात्र, फल विज्ञान विभाग, जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर
[2]उद्यान विज्ञान, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वराणसी
[3]मृदा विज्ञान, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वराणसी
[4]भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर

परिचय

स्ट्रॉबेरी का वानस्पतिक नाम फ्रेगेरिया अननासा है। यह रोजेसी कुल का सदस्य है। इसका पौधा शाकीय, छोटा, कोमल तथा बहुवर्षीय होता है। इसका तना नाममात्र का तथा पूर्ण विकसित त्रिपत्री पत्तियां होती हैं। यह दो अन्य प्रजातियों (फ्रेगेरिया चिलयोनसिस एवं फ्रेगेरिया बरजीनियाना) के प्राकृतिक संकरण से विकसित हुई है। स्ट्रॉबेरी के फल बड़े लुभावने, रसीले एवं पौष्टिक होते हैं। ये मध्यम आकार (10 से 15 ग्राम), चित्ताकर्षक, सुवासयुक्त और सिंदूरी रंग लिए हुए बहुत ही नर्म होते हैं।

इनका खाने योग्य भाग लगभग 18 प्रतिशत होता है। इन फलों में विटामिन-सी तथा लौह तत्व प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। यह अपने विशेष स्वाद एवं रंग के साथ-साथ औषधीय गुणों के कारण भी एक महत्वपूर्ण फल है। इसकी खेती अन्य फल वाली फसलों की तुलना में कम समय में ज्यादा मुनाफा दिला सकती है। यह अल्प अवधि (3 से 4 महीने) में ही फलत देने वाली फसल है।

प्रायः हमारा भारत देश विभिन्नताओं का देश है जिसके हर एक क्षेत्र की भिन्न-भिन्न जलवायु है जो सभी फसलों को एक सामान सभी जगहों पर उगाने की अनुमति नहीं देता है। इसी कारण कई ऐसी फसलें जो किसानों को अधिक मुनाफा प्रदान करने वाली होते हुए भी उनकी खेती नहीं की जा सकती थी। ऐसी ही फसलों में से एक स्ट्रॉबेरी की भी फसल है जिसकी खेती सर्वप्रथम भारत में उत्तर प्रदेश तथा हिमाचल प्रदेश के कुछ पहाड़ी क्षेत्रों में 1960 के दशक से शुरू हुई, परन्तु उपयुक्त किस्मों की अनुउपब्धता तथा तकनीकी ज्ञान की कमी के कारण इसकी खेती में अब तक कोई विशेष सफलता नहीं मिल सकी तथा यह देश के ठण्डे प्रदेशों तक ही सिमित थी। भारत में कुछ वर्षों पूर्व तक स्ट्रॉबेरी की खेती केवल पहाड़ी क्षेत्रों जैसे उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, कश्मीर घाटी, महाराष्ट्र, कालिम्पोंग इत्यादि जगहों तक ही सीमित थी। परन्तु पिछले कुछ सालों में खेती को लेकर किसानों की सोच काफी बदल चुकी है। उनकी रूझान गैरपरंपरागत खेती की तरफ तेजी से बढ़ी है। निरंतर रूप से होने वाले शोधों एवं सुधारों की वजह से, आज अधिक उपज देने वाली विभिन्न किस्में, तकनीकी ज्ञान, परिवहन, शीत भण्डार और प्रसंस्कण व परिरक्षण की जानकारी होने से स्ट्रॉबेरी की खेती लाभप्रद व्यवसाय बनती जा रही है। इसका उपयोग कई मूल्य संवर्धित उत्पादों जैसे आईसक्रीम, जैम, जैली, कैंडी, केक इत्यादि बनाने के लिए भी किया जाता है। बहुदेशीय कम्पनियों के आ जाने से स्ट्रॉबेरी के विशेष संवर्धित उत्पादों को बनाए जाने के लिये भी प्रोत्साहन मिल रहा है। उपर्युक्त लाभों को देखकर तथा वर्तमान में नई उन्नत प्रजातियों के विकास से इसको उष्णकटिबंधीय जलवायु में भी सफलतापूर्वक उगाया जाने लगा है। जिसके फलस्वरूप यह मैदानी भागों जैसे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, बिहार आदि राज्यों में अपनी अच्छी पहचान बना चुकी है। इसी का नतीजा है कि स्ट्रॉबेरी जैसी फसल जिसकी पैदावार ठंडे प्रदेशों में ही केवल संभव थी, वह अब गर्म प्रदेशों में भी किसानों को बम्पर मुनाफा दे रही है। स्ट्राबेरी की खेती करने वाले बाराबंकी के सत्येंद्र वर्मा की अगर मानें तो एक एकड़ की फसल में किसान 5-6

लाख रुपए तक की कमाई कर सकते है। प्रायः उपर्युक्त विशेषताओं तथा उपयोगिताओं के साथ-साथ, अधिक से अधिक लाभ के लिए उचित पद्धति से खेती की जानकारी अत्यंत आवश्यक होती है। जो आगे वर्णित है:

स्ट्रॉबेरी के लिए उपयुक्त जलवायु

भारत में स्ट्रॉबेरी की खेती शीतोष्ण क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जाती है। परंतु उन्नत किस्मों के विकास से इसको अब समशीतोष्ण एवं उष्णकटिबंधीय जलवायु में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। मैदानी क्षेत्रों में सिर्फ सर्दियों में ही इसकी एक फसल ली जा सकती है। यह कम प्रकाश अवधि (शॉर्ट डे) वाला पौधा है। इसमें पुष्पन प्रारंभ होने के लिए लगभग 10 दिनों तक 8 घंटे से कम प्रकाश अवधि की जरूरत होती है। पौधों की अच्छी बढ़वार के लिए दिन का अधिकतम तापमान 22 डिग्री सेल्सियस और रात का तापमान 7 से 13 डिग्री सेल्सियस उपयुक्त माना गया है, जो की वर्ष के अक्टूबर-नवम्बर के माह में उपलब्ध होता है। इसी समय रनर या स्टोलन जिन्हें शीतोष्ण क्षेत्रों से मगा कर लगाया जाता है। जाड़े में पौधों की निष्क्रियता के कारण बढ़वार नहीं होती है परन्तु न्यून तापमान अवस्था पौधे की प्रसुप्तावस्था को तोड़ने में बहुत ही सहायक होता है। जैसे ही तापमान बढ़ता है पुष्पन प्रारम्भ हो जाती है। यहाँ फल फरवरी-मार्च में तैयार हो जाते है। भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान के क्षेत्रीय केन्द्र शिमला में किये गए शोध यह सिद्ध करते हैं कि दिसम्बर से फरवरी माह तक स्ट्राबेरी की क्यारियाँ प्लास्टिक शीट से ढँक देने से फल एक माह पहले तैयार हो जाते हैं और उपज भी 20 प्रतिशत अधिक हो जाती है। अधिक वायु वेग वाले स्थान इसकी खेती के लिये उपयुक्त नहीं है। इन स्थानों पर वायु रोधक प्रावधान होना चाहिए।

स्ट्रॉबेरी के लिए भूमि का चुनाव

स्ट्रॉबेरी की खेती विभिन्न प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है परन्तु यह अच्छे जल निकास वाली दोमट मिट्टी जो आंशिक रूप से अम्लीय हो, जिसका पी.एच. मान 5.5 से 6.5 हो तथा जिसमें उच्च जैविक कार्बन हो सर्वोपयुक्त होती है। पौधे की अधिकांश जड़ें मृदा की ऊपरी सतह में लगभग 15-30 सेमी. तक में ही पाई जाती है। मृदा में कैल्शियम की अधिक मात्रा के कारण पत्तियां पीली पड़ जाती हैं जिसके फलस्वरूप प्रकाश संश्लेषण की प्रकिया धीमी पड़ जाती है जो उत्पादन को प्रभावित करती है। उच्च जैविक कार्बन वाली हल्की मृदा रनर बनाने के लिए सबसे अच्छी मानी जाती है। लवणीय मृदा तथा जिसमें सूत्रकृमि उपस्थित हों, स्ट्रॉबेरी की खेती के लिए अनुपयुक्त होती हैं।

स्ट्रॉबेरी की उन्नत किस्में

भारत के विभिन्न भागों में उगाने के लिए स्ट्रॉबेरी की बहुत सी उन्नत किस्में हैं जैसे एन आर राउंड हैड, रैड कोट, कंटराई स्वीट, बल्बरी, चौंडलर, स्वीट चार्ली, पजारो, सेल्वा, ट्योगा, टोरे, विन्टर डॉन, फ्लोरिना, कैमा रोजा, ओसो ग्रैन्ड, ओफरा, गारौला, सीस्कैप, बेलवी, फर्न, डागलस, फर्न, ऐडी, ब्राईटन, बेलरूबी, दाना तथा ईटना इत्यादि हैं। इनमें अच्छा आकार टोरे तथा एन आर राउंड हैड का ही है जिसके फल का वजन 4-5 ग्राम होता है। व्यावसायिक फल उत्पादन के लिए सही किस्मों का चुनाव बहुत जरूरी है। किस्मों का चयन क्षेत्र की जलवायु एवं भूमि की विशेषताओं को ध्यान में रखकर ही करना चाहिए। भारत में स्ट्रॉबेरी की अधिकतर किस्में बाहर से मगवाई हुई है। व्यावसायिक रूप से खेती करने के लिए प्रमुख किस्में निम्नलिखित हैओफ्रा, कमारोसा, चांडलर, स्वीट चार्ली, ब्लेक मोर, एलिस्ता, सिसकेफ, फेयर फाक्स आदि किस्में है। परन्तु उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्र के लिए चौंडलर सबसे उपयुक्त किस्म है। जिसके फल 15-20 ग्राम के होते हैं तथा इसमें शर्करा की मात्रा 6.1 प्रतिशत होने के साथ-साथ ही यह वर्षा से होने वाली शारिरिक चोट से प्रतिरोधी एवं विषाणु के प्रति सहनशील होते हैं। यह किस्म खाने के साथ-साथ प्रसंस्करण के लिए उपयोगी होती है। स्ट्रॉबेरी की उपज इसकी जाति और जलवायु पर निर्भर करती है। सामान्यतया इसकी उपज 200-500 ग्राम प्रति पौधा मिल जाती है। यद्यपि विदेशों में अधिकतम 100-1000 ग्राम प्रति पौधा ली जा चुकी है।

स्ट्रॉबेरी की प्रसारण प्रवर्धन विधि

आमतौर पर स्ट्रॉबेरी का प्रवर्धन रनर (लता को पकड़ने वाली नोक) या स्टोलन के द्वारा किया जाता है। स्टोलन एक रेंगने वाली शाखा है जो जड़ीय शीर्ष के ऊपर पत्ती कक्ष से निकलती हैं। रनर पौधों का निर्माण स्टोलन पर सतत रूप से बनने वली उन गांठों से जो जमीन की सतह को छूती हैं उनसे प्राथमिक जड़ें बनती हैं अच्छे प्रबंधन से इससे 7-15 रनर प्रति पौधा प्राप्त कर सकते हैं।

इन दिनों स्ट्रॉबेरी का प्रसारण, सुक्ष्म प्रसारण या टिशू कल्चर तकनीक के द्वारा भी प्रचलन में है। परन्तु शोधों से पता चलता है की टिशू कल्चर तकनीक

से प्राप्त नर्सरी, रनर पौधों की अपेक्षा पहले साल में उत्पादन कम देती हैं तथा सूक्ष्म प्रसारण किसी नई किस्म के विषाणु रहित रोपण सामग्री को अधिक-अधिक क्षेत्र में तेजी से फैलाने के लिए अत्तयंत ही महत्वपूर्ण है।

स्ट्रॉबेरी के पौध लगाने का समय

स्ट्रॉबेरी के पौध लगाने का समय कृषि जलवायु क्षेत्र के अनुसार अलग-अलग होता है। प्रायः उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में इसकी रोपाई सितम्बर-अक्टूबर के माह में करते हैं परन्तु अधिक तापमान होने पर थोड़ी देर से रोपाई करनी चाहिए। पौधों को सूखने से बचाने के लिए रोपाई दिन के ठंढे समय में करनी चाहिए।

स्ट्रॉबेरी के लिए खेत की तैयारी

स्ट्रॉबेरी के पौध लगाने से 20-25 दिन पूर्व भूमि की दो से तीन बार अच्छी तरीके से जुताई करनी चाहिए तत्पश्चात 50-80 टन प्रति हेक्टेयर की दर से अच्छे से सड़ी हुई गोबर की खाद को मिट्टी में मिला देना चाहिए। साथ ही साथ फास्फोरस की पूरी मात्रा को भी मिट्टी की अंतिम तैयारी के समय मिला देते हैं। स्ट्रॉबेरी की खेती सतह से उठी हुई क्यारियों में अच्छे ढंग से की जाती है। इसके लिए मिट्टी की अंतिम जुताई के पश्चात क्यारियों को बनाना चाहिए। मैदानी क्षेत्रों में इसकी खेती 60-75 सेमी. चौड़ाई वाली लम्बी क्यारियाँ बनाकर, जिसमें दो कतारें लगाई जा सकें, या मेढ़े बनाकर की जा सकती हैं। प्रायः क्यारी की चौड़ाई 60 सेमी. तथा ऊँचाई 25 सेमी. रखते हैं। पौध की रोपाई किस्मानुसार पक्तियों में 25 सेमी. से लेकर 60 सेमी. तक करते हैं तथा पौध से पौध की आपसी दुरी 25-45 सेमी. रखनी आवशयक होती है। क्यारियों को बनाने के बाद टपक सिंचाई की पाईप लाइन बिछा देनी चाहिए तथा पौध लगाने से पूर्व मृदा नमी संरक्षण, खरपतवार नियंत्रण व अच्छी गुणवत्ता वाले फल प्राप्त करने के लिए प्लास्टिक मल्चिंग करनी चाहिए तथा आवश्यक दूरी पर इसमें छेद करना चाहिए।

स्ट्रॉबेरी की फसल में मल्चिंग या पलवार बिछाना

स्ट्रॉबेरी की खेती के लिए मल्चिंग एक आवश्यक तकनीक है जिसके द्वारा हमें खेत में पानी की नमी को बनाए रखने तथा वाष्पीकरण को कम करने में सहायता मिलती है। यह तकनीक खेत में मिट्टी के कटाव को भी रोकती है और खेत में खरपतवार को होने से बचाया जाता है। यह फसल पर खरपतवारों से पड़ने वाले प्रभाव को नियंत्रण करने एवं पौधों को लम्बे समय तक सुरक्षित रखने में बहुत सहायक होती है। मल्चिंग की हुई भूमि कठोर नहीं हो पाती जिससे पौधों की जड़ों का विकास अच्छा होता है। यह शरद ऋतु में मिट्टी में ठंड/विगलन चक्र से पौधों पर पड़ने वाले प्रभाव को रोकती है साथ ही साथ यह अति निम्न तापमान पर पुष्प कली को मरने से बचाती है। जिस खेत में स्ट्रॉबेरी वाली फसल लगानी है उसमें उठी क्यारियों पर टपक सिंचाई पाइपलाइन लगाने के बाद 25 से 30 माइक्रोन प्लास्टिक मल्च फिल्म जो की सब्जियों के लिए बेहतर रहती है उसे उचित तरीके से बिछा दे फिर फिल्म के दोनों किनारों को मिट्टी की परत से दबा दिया जाता है। इसे हम ट्रैक्टर चालित यंत्र से भी दबा सकते है। फिर उस फिल्म पर गोलाई में पाइप से पौधों से पौधों की दूरी तय कर के छिद्र कर लें। किये हुए छेदों में नर्सरी में तैयार पौधों की रोपाई कर देनी चाहिए। स्ट्राबेरी की क्यारियों को सूखी घास या काले रंग की प्लास्टिक की चादर से भी ढकना विशेष लाभकारी होता है। सूखी घास की मोटाई 5-6 सेमी. आवश्यक है। विभिन्न अनुसन्धानों द्वारा यह प्रमाणित किया गया है कि इस विधि द्वारा मिट्टी में अच्छी नमी रहती है, खरपतवार भी नियंत्रित रहते हैं, पाले के कुप्रभावों को भी कम करती है और फलों का सड़ना कम हो जाता है। पकने वाले फलों को सूखी घास से ढँकने से पक्षियों द्वारा

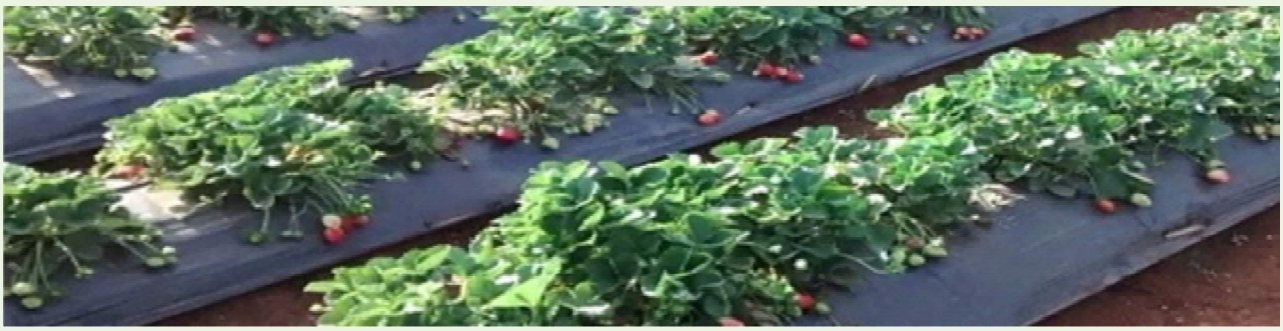

नुकसान भी कम हो जाता है।

स्ट्रॉबेरी के पौध लगाने की विधि

मैदानी क्षेत्रों में सितम्बर-अक्टूबर से लेकर नवम्बर तक लगाए जाते हैं। पौधे किसी प्रमाणित व विश्वस्त नर्सरी से ही लिये जाने चाहिए, जिससे इसकी जाति की जानकारी मिले और रोग रहित भी हों। पौधे लगाने से पहले पुराने पत्ते निकाल दिये जाने चाहिए और एक दो नए उगने वाले पत्ते ही रखने चाहिए। मिट्टी से होने वाले रोगों से बचने के लिये पौधों की जड़ों को एक प्रतिशत बोर्डो मिश्रण या कापर आक्सीक्लोराइड (0-2 प्रतिशत) या डाइथेन एम 45 (0.2 प्रतिशत) के घोल में 10 मिनट तक उपचारित करके छाया में नमी को सूखा लेना चाहिए। क्यारियों में पंक्ति से पंक्ति तथा पौध से पौध का अन्तर क्रमशः 45-60 तथा 25-30 सेमी. रखा जाता है। पौधा लगाने के समय क्यारियों में लगभग 15 सेमी. गहरा छोटा गड्ढा बनाकर पौधा लगाकर उपचारित जड़ों के इर्द-गिर्द को अच्छी तरह दबा दिया जाता है ताकि जड़ों तथा मिट्टी के बीच वायु न रहे। पौधे लगाने के बाद हल्की सिंचाई आवश्यक है।

स्ट्रॉबेरी के लिए खाद एवं उर्वरक

स्ट्रॉबेरी की फसल में खाद तथा उर्वरक आवश्यकता मिट्टी की उपजाऊ शक्ति व पैदावार पर निर्भर होती है। साधारण रूप से फसल की अच्छी पैदावार के लिए 25-112 किग्रा. नत्रजन, 56-90 किग्रा. फास्फोरस तथा 56-112 किग्रा. पोटाश मृदानुसार आवश्यक होता है स्ट्रॉबेरी में पोषक तत्त्व मुख्यतया जैविक स्रोतों से दिया जाता है जो लम्बे समय तक मृदा में उपलब्ध रहता है या इसका कुछ भाग रासायनिक खादों से भी दे सकते हैं। आमतौर पर 50 ग्राम उर्वरक मिश्रण- किसान खाद (कैन), सुपर फास्फेट और म्युरेट आफ पोटाश को 20:20:1 के अनुपात में देने की सिफारिश की जाती है। यह मिश्रण वर्ष में दो बार, मार्च तथा अगस्त माह में दिया जा सकता है। अथवा अधिक उर्वरक उपयोग दक्षता के लिए नत्रजन की आधी एवं फास्फोरस की पूरी मात्रा को मिट्टी की तैयारी के समय तथा बचे हुए नत्रजन को सक्रिय वृद्धि अवस्था में देना चाहिए। पोटाश की पूरी मात्रा को पुष्पन के समय देने से अधिक उत्पादकता के साथ-साथ अच्छी गुणवत्ता वाले फल प्राप्त होते हैं। या फर्टिगेशन के रूप में एन पी के 19:19:19 की 25 ग्राम मात्रा प्रति वर्गमीटर की दर से सम्पूर्ण फसल चक्र में देनी चाहिए। यह मात्रा 15 दिनों के अंतराल पर 4 से 5 भागों में बांटकर देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त 2 प्रतिशत यूरिया, 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट, 0.5 प्रतिशत कैल्शियम सल्फेट एवं 0.2 प्रतिशत बोरिक एसिड का पानी के साथ घोल बनाकर पौधों पर छिड़काव करना उत्पादकता एवं गुणवत्ता को बढ़ाने में लाभकारी होता है।

स्ट्रॉबेरी की फसल में सिंचाई तथा देखभाल

स्ट्रॉबेरी के पौधों की जड़ें गहरी होती हैं इसलिये जड़ों के निकट नमी की कमी से पौधों को क्षति हो सकती है और पौधे मर भी सकते हैं। सिंचाई की थोड़ी सी कमी से भी फलों के आकार और गुणवत्ता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। स्ट्रॉबेरी की फसल को बार-बार परन्तु हल्की सिंचाई चाहिए। सामान्य परिस्थितियों में शरद ऋतु में 10-15 दिन तथा ग्रीष्म में 5-7 दिन के अन्तराल में सिंचाई आवश्यक है। ड्रिप (बूँद-बूँद) सिंचाई विधि विशेष लाभप्रद है। सिंचाई की मात्रा मिट्टी की अवस्था तथा खेत की ढलान पर निर्भर करती है। क्यारियों पर टपक सिंचाई पाइपलाइन लगाने के पश्चात मल्चिंग करने से पानी की आवश्यकता को कम किया जा सकता है। ओलावृष्टि से प्रभावित क्षेत्रों में क्यारियों पर ओलारोधक जालों का प्रयोग किया जा सकता है। जिस पौधे से फल लेने हों उनमें से रनर काट देने चाहिए अन्यथा भरपूर फसल पाने में रूकावट आती है और फलों का आकार भी छोटा रह जाता है, जिसका प्रभाव विक्रय मूल्य पर पड़ता है। स्ट्रॉबेरी का पौधा पहले वर्ष से ही फल देने लग जाता है। शीतोष्ण क्षेत्रों में एक पौधे की लाभप्रद फसल तीन वर्ष तक ली जा सकती है, परन्तु सबसे अधिक उपज दो वर्ष की आयु का पौधा देता है। कृषक अपने खेतों में स्ट्रॉबेरी इस क्रम में लगाएँ ताकि अधिक-से-अधिक क्यारियाँ 2 या 3 वर्ष की आयु के पौधों की हों और तीन वर्ष से अधिक आयु वाली क्यारियों में पुनः पौधा रोपण कर दें।

स्ट्रॉबेरी की फसल में निराई-गुड़ाई

स्ट्रॉबेरी के पौधे लगाने के कुछ समय पश्चात उनके आस-पास विभिन्न प्रकार के खरपतवार उग आते हैं। ये पौधों के साथ पोषक तत्वों, स्थान, नमी, वायु आदि के लिए स्पर्धा करते हैं। इसके साथ ही ये विभिन्न प्रकार के कीट एवं रोगों को आश्रय प्रदान करते हैं। अक्टूबर में रोपित पौधों से नवंबर में फुटाव शुरू हो जाता है। फुटाव शुरू होने पर खेत की निराई-गुड़ाई करके खरपतवार निकाल देने चाहिए।

स्ट्रॉबेरी की फसल में कीट व रोग नियंत्रण

स्ट्रॉबेरी की खेती को कई कीट व रोग क्षति पहुँचाते हैं। कीटों में तेला, माइट, कटवर्म तथा सूत्रकृमि प्रमुख है। डीमैथोयेट, डिमैटोन, फौरेट का प्रयोग इन्हें नियंत्रण में रखता है। 1.5 ग्राम/लीटर की दर से वेटेबल सल्फर के छिड़काव करने से माईट को नियंत्रित किया जा सकता है। एल्डीकार्ब (10 G) की 5 किग्रा. प्रति हेक्टेयर दर से छिड़काव भी रेड स्पाइडर माईट के नियंत्रण के लिए प्रभावी है। इसके अतिरिक्त क्लोरपायरीफॉस या कार्बामेट् का भी प्रयोग कर सकते हैं। कटवर्म को 5 प्रतिशत क्लोरैडेन या हेप्टाक्लोर धूल की 50 किग्रा/हे. की दर से धूलीकरण या रोपाई से पहले 2 मिली./ली. पानी के साथ मिट्टी में डालने से नियंत्रित किया जा सकता है। सामान्यतया स्ट्रॉबेरी के फलों पर भूरा फफूँद रोग तथा पत्तों पर धब्बों वाले रोग व काली जड़ सड़न रोग लगते हैं। भूरा फफूँद रोग को डायाथयोकार्बामेट पर आधारित फफूँदनाशक रसायनों जैसे डाइथेन एम-45 के स्प्रे से नियंत्रित किया जा सकता है। साप्ताहिक अंतराल पर वेटेबल सल्फर की 1.5 ग्राम प्रति लीटर पानी के दर से दो छिड़काव भूरा फफूँद रोग के लिए प्रभावी होता है। फल लग जाने के बाद किसी भी फफूँद व कीटनाशक रसायनों का छिड़काव नहीं करना चाहिए। यदि किन्हीं आपातकालीन परिस्थितियों में करना भी पड़े तो छिड़काव विशेष सावधानी से किया जाना चाहिए। तीन वर्ष तक स्ट्रॉबेरी की खेती करने के बाद खेतों को कम-से-कम एक वर्ष तक खाली रखें या गेहूँ, सरसों, मक्का तथा दलहन फसलों का फसल चक्र अपनाने से कीट, सूत्रकृमि तथा अन्य रोगों का प्रकोप कम हो जाता है।

स्ट्रॉबेरी की फसल का पाले या सर्दी से बचाव

पाले या सर्दी से बचाव के लिए निम्न सुरंग (लो-टनल) तकनीक का प्रयोग करना लाभप्रद होता है। शरद ऋतु (दिसंबर से जनवरी) में तापमान में काफी गिरावट आ जाती है। इस समय खेत में स्ट्रॉबेरी के पौधों को पाले से बचाने के लिए निम्न सुरंग तकनीक का उपयोग काफी फायदेमंद होता है। इससे विपरीत ठंडे मौसम में भी अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है। लो-टनल एक कम ऊँचाई वाली संरचना होती है। इसका निर्माण खुले खेत में उगाई जाने वाली फसल को कम तापमान या पाले से होने वाले नुकसान से बचाने के लिए किया जाता है। यह दूसरी संरचनाओं की अपेक्षा काफी कारगर एवं सस्ती तकनीक है। इसे तैयार करना काफी आसान होता है। लो-टनल संरचना में हरितगृह जैसा ही वातावरण उत्पन्न हो जाता है।

निम्न सुरंग (लो-टनल) स्थापित करने के लिए अर्धचन्द्राकार लोहे के तारों को 2 से 3 मीटर की दूरी पर स्थापित करते हैं। उसके बाद अर्धचन्द्राकार लोहे के तारों के ऊपर मध्य में रस्सी बांध देते हैं। इन तारों पर 50 माइक्रॉन मोटाई तथा 2 मीटर चौड़ी पारदर्शी प्लास्टिक की चादर बिछाकर इसकी लंबाई वाले दोनों सिरों को मिट्टी से दबा देते हैं। इससे तेज हवा चलने पर भी प्लास्टिक नहीं उड़ती। निम्न सुरंग या पॉलीथीन की ऊँचाई लगभग 60 से 70 सेंटीमीटर रखते हैं। प्लास्टिक की फिल्म को दिन के बाद हटा देते हैं तथा रात के समय पुनः ढक देते हैं। ऐसा करने से सुरंग के अंदर मिट्टी के तापमान में वृद्धि हो जाती है। इससे पुष्पन जल्दी होता है और अच्छी फलत प्राप्त होती है। फरवरी के दूसरे या तीसरे सप्ताह में जब तापमान बढ़ जाता है तो प्लास्टिक फिल्म को पूर्णतः हटा देते हैं।

स्ट्रॉबेरी की तुड़ाई तथा पैकेजिंग

मैदानी क्षेत्र में स्ट्रॉबेरी फरवरी से अप्रैल माह तक पकती हैं स्ट्रॉबेरी की तुड़ाई हाथ से करते हैं परन्तु आज के समय में कई यांत्रिक विधि से तुड़ाई करने की तकनीक को विकसित करने के कई प्रयास किए जा रहें हैं स्ट्रॉबेरी के फलों की तुड़ाई का समय बाजार की दूरी के अनुसार तय करते हैं। स्थानीय बाजार में बिक्री के लिए जब फलों के पूर्ण रूप से पक जाने पर करना चाहिए। जब फल का रंग सत्तर (70%) प्रतिशत असली हो जाये तो तोड़ लेना चाहिए। अगर बाजार दूरी पर है तो थोड़ा सख्त

ही तोड़ना चाहिए। तुड़ाई अलग-अलग दिनों में करनी चाहिए। तोड़ते समय स्ट्रॉबेरी के फल को नहीं पकड़ना चाहिए। फलों की तुड़ाई डंठल सहित प्रातःकाल सूरज निकलने से पूर्व ही पूर्ण कर लेनी चाहिए। तोड़े हुए फलों को रखने के लिए ट्रे का प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि इसके फल बड़े नाजुक होते हैं। इन्हें गहरे बर्तन में रखने से फलों की ऊँची परत के दबाव के कारण नीचे के फलों को नुकसान पहुँच सकता है। नीचे दिए चित्र से स्ट्रॉबेरी के फल के आकार में विकास तथा रंगों में होने वाले परिवर्तन का पता चलता है जो कि तोड़ने वाले व्यक्ति के लिए अत्यंत आवश्यक है।

स्ट्रॉबेरी के फलों को 2 से 3 दिनों तक ही सुरक्षित रखा जा सकता है। अतः तोड़ने के बाद फलों को ज्यादा समय तक नहीं रखना चाहिए। बिक्री के लिए बाजार में भेजने के लिए फलों को प्लास्टिक के छोटे डिब्बों में पैक करना चाहिए तथा बाद में इन डिब्बों को कोरूगेटिड फाइबर बोर्ड (सीएफबी) से बने बड़े डिब्बों में पैक करके भेजना चाहिए।

उपज एवं लाभ का गणित

स्ट्रॉबेरी के फलों की उपज कई बातों पर निर्भर करती है। इनमें उगाई जाने वाली किस्म, जलवायु, मृदा, पौधों की संख्या, फसल प्रबंधन इत्यादि प्रमुख हैं। उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में भी वैज्ञानिक तकनीक और अच्छे फसल प्रबंधन करने से प्रति पौधे से एक मौसम में 500 से 700 ग्राम फल प्राप्त किए जा सकते हैं। आदर्श अवस्था में एक हेक्टेयर क्षेत्रफल से 20 से 25 टन स्ट्रॉबेरी फलों का उत्पादन हो जाता है। दिल्ली मुंबई जैसे महानगरों में स्ट्रॉबेरी की प्रति किलो की कीमत 100 रुपये से लगाकर 300 रुपये तक होती है। चूँकि अभी तक उत्तर भारत के शहरों में इसकी मांग होने पर भी उपलब्धता नहीं हो पाती है इसलिए इधर के क्षेत्रों में इसकी और अधिक कीमत पर बिकने की संभावनाएं हैं जो किसान के लिए सबसे अनुकूल परिस्थिति है यदि देखा जाये तो किसानों को लागत से दोगुना ज्यादा मुनाफा स्ट्राबेरी की खेती में होता है।

"मेरी एक ही इच्छा है कि भारत एक अच्छा उत्पादक हो और इस देश में कोई अन्न के लिए आंसू बहाता हुआ भूखा ना रहे।"

सरदार वल्लभ भाई पटेल

एवोकाडो : खेती एवं उसके स्वास्थ्यवर्धक गुण

सुरभि सुमन एवं रामाशीष कुमार

भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर (बिहार)

एवोकाडो एक प्रकार का क्लाइमैट्रिक फल है, जिसका वैज्ञानिक नाम पेर्सी अमेरिकाना (Persea americana) है। इसे बटर/एलिगेटर फ्रूट के नाम से जाना जाता है। यह लौरेसी (Lauraceae) कुल का पौधा है, जिसकी ऊँचाई लगभग 60-65 फीट तक होती है इसके फल नाशपाती के आकार का एवं गोल होता है, तथा रंग हरे एवं काले होते है। एवोकाडो की उत्पति दक्षिण मध्य मैक्सिको से हुई है। सर्वप्रथम एवोकाडो सिर्फ पूएब्ला और मेक्सिको में उगाया जाता था और वही से व्यावसायिक उत्पादन होता था, लेकिन इसके विभिन्न स्वास्थ्यवर्धक गुणों के कारण यह फल अब कई देशों में उगाया जाने लगा है। इसकी खेती व्यावसायिक रूप से दुनिया के उष्णकटिबंधीय और भूमध्य जलवायु में की जाती है। भारत के कुछ दक्षिणी ट्रॉपिकल जिले जैसे तमिलनाडु, केरला, कर्नाटक, महाराष्ट्र तथा नार्थ ईस्टर्न हिमालयन जिले सिक्किम आदि जगहों पर एवोकाडो का उत्पादन हो रहा है।

एवोकाडो फल में विशेष स्वास्थ्य-वर्धक तथा पौष्टिक गुणों से भरपूर होने के कारण देश के और कई हिस्से में इसकी खेती की जा रही है। एवोकाडो के गूदे में उच्च मात्रा में स्वास्थ्ययुक्त प्रोटीन, फैट (जिसमें कोलेस्ट्रॉल की मात्रा बहुत कम होती है), विटामिन्स (विटामिन A, B, C, K, एवं E), मिनरल्स (मैग्नीशियम, मैंगनीज, ताँबा, लोहा, जस्ता, फॉस्फोरस) तथा फाइबर पाया जाता है इसमें उच्च मात्रा में मोनो-असंतुलित फैट, एंटीऑक्सीडेंट एवं सभी प्रकार के एमिनो एसिड पाया जाता है, जो ब्लड प्रेशर को कम करता है।

चित्रः एवोकाडो पौधा

अवोकेडो की खेती करने के संक्षिप्त विश्लेषन

1. एवोकाडो के पौधे एवं वैज्ञानिक वर्गीकरण

यह एक फलदार वृक्ष होता है, जिसकी लम्बाई लगभग 60-65 फीट ऊँचाई तक होती है। इसकी पत्तियाँ वरगद के समान चौड़ी एवं मोटी होती है। इसके फल गोल और ओवल आकार के होते हैं तथा ऊपरी परत गद्दीदार मोटी होती है।

वैज्ञानिक वर्गीकरण

जगत : पादप
संघ : एंजियोस्पर्म
कुल : लौरसी
वंश : पर्सी
जाति : पेर्सी अमेरिकाना

2. मिट्टी एवं जलवायु

एवोकाडो की खेती उष्णकटिबंधीय जलवायु में की जाती है और यह दक्षिण अमेरिकी उपमहाद्वीप में पाया जाता है इसकी उच्च पैदावार होने के लिए नमी की मात्रा लगभग 60% से अधिक तथा तापमान 20-30ºC उपयुक्त होता है। इसके पौधे में अधिक ठंड (5ºC से कम) तथा अधिक तापमान (लगभग 40ºC से अधिक) को सहन करने की क्षमता नहीं होती है।

मिट्टी: सामान्य तौर पर लैटेराइट मिट्टी इसकी खेती के लिए उत्तम होता है। इसमें चिकनी मिट्टी की मात्रा अधिक होने से पानी रोकने की क्षमता अधिक होती है। pH: अवोकेडो की उतम खेती के लिए pH मान 5 से 7 उपयुक्त होता है।

3. कैनोपी एवं उर्वरक प्रबंधन

एवोकाडो पौधे से गुणवत्तायुक्त उच्च कोटि के फल तथा अधिक पैदावार के लिए पौधे की छत्रक तथा उर्वरकों के प्रबंधन पर विशेष ध्यान रखना चाहिए, इसके लिए समय-समय पर वैज्ञानिक विधि से कटाई-छँटाई कर पौधे में विशेष आकार देकर उच्च पैदावार लिया जा सकता है। छत्रक प्रबंधन के तहत फल तुड़ाई के उपरांत पौधों की अवांछित टहनियों/डालियों की कटाई-छटाई करना चाहिए। तत्पश्चात 50 : 50 : 50 के अनुपात में नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश का प्रयोग करना चाहिए।

चित्रः एवोकाडो फल

फलोत्पादन

एवोकाडो फल का उत्पादन 8 से 10 साल के पौधों से लगभग 200 से 300 फल प्राप्त होता है। एक फल का वजन लगभग 300 ग्राम से 400 ग्राम तक होता है। इस फल का बाजार मूल्य लगभग रु. 250/- से 300/- प्रति किलो मिलता है।

तालिका 1. एवोकाडो में पाया जाने वाले विभिन्न फैटी एसिड

QVh ,fIM d çe[k ?kVd	ek=k ¼%½
पालमिटिक एसिड	28.21
पालमीटोलिक एसिड	5.69
स्टैरिक एसिड	0.69
ओलिक एसिड	40.94
लिनोलेइक एसिड	13.87
लिनोलेनिक एसिड	0.48

एवोकाडो में स्वास्थ्यवर्धक गुण

एवोकाडो फल में विशेष वानस्पतिक रसायन, पौष्टिक तत्व, खनिज लवण एवं विटामिन पाया जाता है जो शरीर के लिए फायदेमंद होता है। यह एक मोनो-अनसैचुरेटेड फैटी एसिड का एक अच्छा स्रोत हैं, इसमें शुगर की मात्रा बहुत ही कम होती है। इसके अतिरिक्त यह ऊर्जा का एक उत्तम स्रोत हैं एवं इसके अतिरिक्त निम्नलिखित स्वास्थ्यवर्धक लाभ :

• पाचन क्रियाओं के लिए

एवोकाडो में प्रचुर मात्रा में फाइबर पाया जाता है जो कि हमारे पेट के लिए बहुत लाभदायक होता है। इसके सेवन से पेट साफ रहता है और कब्ज जैसी बीमारी से भी दूर रखता है।

तालिका 2. एवोकाडो में पाए जाने वाले पोषकीय तत्व/100 ग्राम

Øe	rRo	ek=k
1	कुल शुगर	0.2 g
2	मोनो सैचुरेटेड फैटी एसिड्स	6.7 g
3	सोडियम	5.5 mg
4	पोटैशियम	345 mg
5	विटामिन–ए	43 µg
6	विटामिन–सी	6.0 µg
7	विटामिन–ई	1.3 mg
8	विटामिन–के	14 µg
9	फोलेट	60 mg
10	विटामिन–बी6	0.2 mg
11	नियासिन	1.3 mg
12	जियाजैन्थिन zeaxanthin	85 µg
13	फीटोस्टेरॉल	57 mg
14	डाइटरी फाइबर	4.6 g

• दिल के बीमारीयों के लिए

एवोकाडो के फल में पर्याप्त मात्रा में पोटैशियम पाया जाता है जो ब्लड प्रेशर जैसी परेशानी को दूर करता है और दिल की बीमरियों के लिए लाभदायक माना जाता है।

• हृदय रोगों के लिए

एवोकाडो में पाया जाने वाला बीटा-सिटोस्टीरॉल जो कोलेस्ट्रॉल के लेवल को कम कर हृदय के रोगों से निजात दिलाता है। इसके फल में मौजूद पोटैशियम हाइपरटेंशन और रक्त वाहिकाओं और आर्टरी के तनाव को कम करता है तथा हॉर्ट अटैक और स्ट्रोक होने के खतरा को कम करने में सहायक होता है। एवोकाडो हृदय को स्वस्थ रखने में भी काफी उपयोगी माना गया है।

• वजन को कम करने में

एवोकाडो फल में पाया जाने वाला पोषकीय तत्व शरीर के वजन को नियंत्रण रखने में मदद करता हैं। इसलिए वजन कम करने वाले लोग अपने डाइट प्लान में इसका सेवन करना काफी उपयोगी मानते है।

• अर्थराइटिस की समस्या में

एवोकाडो में एंटी इंफ्लैमेटरी गुण पाया जाता है इसके साथ-साथ फाइटोकेमिकल, फ्लैनॉयड, कैरोटिनॉयड, फाइटोस्टीरॉल, फैटी एल्कोहॉल और ओमेगा-3 फैटी एसिड पाया जाता है, जो पैर के जोड़ों और माँसपेशियों के सूजन को कम करता है और अर्थराइटिस से निजात दिलाने में मददगार होता है।

• दाँतों के लिए

एवोकैडो में पाया जाने वाला मौजूद एंटीबैक्टीरियल और एंटीऑक्सीडेंट फ्लेनॉयड मुंह के बैक्टीरिया को मारने में सहायक होता है। जो दाँतों में होने वाली समस्या को दूर करता है।

• डायबिटीज के लिए

एवोकाडो में मोनोसैचुरेटेड फैट पाया जाता है, जो ब्लड शुगर लेवल को संतुलन वनाये रखने में मदद करता है और शरीर में इन्सुलिन के स्तर को बनाये रखता है।

• आँखों के लिए

एवोकाडो में लूटिन नामक रसायन पाया जाता है जो आँखों की रोशनी के लिए फायदेमंद होता है।

"चाहे आप जीवन में सबसे भयंकर परिस्थितियों से गुजर रहे है। आप उस परिस्थितियों का उपयोग करके एक बेहतर इंसान बन सकते है या अपने जीवन को अस्त-व्यस्त कर सकते है।" **सदगुरू**

लीची के छोटे प्रसंस्करण के लिए बुनियादी ढाँचा तथा संरक्षण हेतु प्रसंस्कृत उत्पाद

विकाश चन्द्र वर्मा, प्रणव पाण्डेय एवं पवन शुक्ला

सहायक प्राध्यापक सह कनीय वैज्ञानिक

वीर कुँवर सिंह कृषि महाविद्यालय, डूमरावं, (बक्सर) बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर (भागलपुर)

लीची के फल अपने आकर्षक रंग, स्वाद और गुणवत्ता के कारण भारत ही नहीं बल्कि विश्व में अपना विशिष्ट स्थान बनाये हुये हैं इसमें प्रचुर मात्रा में कैल्शियम पाया जाता है। इसके अलावे प्रोटीन, खनिज पदार्थ, फास्फोरस, विटामिन-सी इत्यादि पाये जाते हैं। इसका उपयोग डिब्बा बंद, स्क्वैश, कार्डियल, सीरप, आर.टी.एस., रस, लीची नट इत्यादि बनाने में किया जाता है इनमें से कुछ का विवरण निचे दिया गया है। लीची को भी सघन बागवानी के रूप में सफलतापूर्वक लगाया जा सकता है, परन्तु इसकी खेती के लिए विशिष्ट जलवायु की आवश्यकता होती है, जो देश के कुछ ही क्षेत्रों में है। अतः इसकी खेती बहुत ही सीमित भू-भाग में की जा रही है। देश में लीची की बागवानी सबसे अधिक बिहार में ही की जाती है। इसके अतिरिक्त देहरादून की घाटी उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र तथा झारखण्ड के छोटा नागपुर क्षेत्र में की जाती है। फलों की गुणवत्ता के आधार पर अभी तक उत्तरी बिहार की लीची का स्थान प्रमुख है।

लीची काफी कोमल और जल्द ही खराब होने वाले फलों की श्रेणी में आता है, इसलिए इसका भंडारण कम समय के लिए ही किया जा सकता है, इसलिए, कटाई के दिन ही उपभोक्ताओं को फल भेजा जाना चाहिए ताकि फलों की गुणवत्ता को सुनिश्चित किया जा सके। इसके अलावा कीड़े, बीमारियाँ, विकार तथा उचित भंडारण या पारगमन का अभाव भी इसकी गुणवत्ता को प्रभावित करता है साथ ही पोषकता में भी कमी लाता है। इन सबो से निपटने के लिए कटाई के बाद तथा पूर्व उपयुक्त उपचार और प्रबंधन करना चाहिए, जिससे इसके भंडारण समय को बढ़ाया जा सके एवं पोषक तत्वों, आकार, रंग, आकार और अन्य चीजों को कोई नुकसान नहीं पहुंचे। कटाई के बाद रोग के उत्पन्न होने का मुख्या कारण श्वसन की त्वरित दर के कारण उत्पन्न ऊष्मा, उच्च तापमान में पारगमन तथा अनुचित भंडारण स्थान है। इसलिए कटाई के बाद की तकनीकों में फलों को ठंडा करना, विभिन्न पैकेज और पैकेजिंग सामग्री का उपयोग, कवकनाशी और अन्य रसायन का उपयोग करना चाहिए। साथ ही कटाई के बाद के प्रबंधन के उद्देश्य से विभिन्न संवर्दित उत्पादों के रूप में भी लीची को संरक्षित किया जा सकता है।

वर्तमान में लीची के फलों का बहुत ही नगण्य मात्रा में संरक्षण और प्रसंस्करण संभव हो पा रहा है। इसका मुख्य कारण कम कटाई का मौसम है जिससे बड़ी मात्रा में ये बर्बाद हो जाते हैं। भारतीय इसके शौकीन हैं, जो नियमित रूप से मुख्य भोजन के साथ-साथ स्नैक्स के साथ भी उपयोग में लाते है। इसके अलावा रेस्तरां, भोजनालयों, सड़क के किनारे के ढाबों, क्लबों, होटलों, कैटरर्स आदि भी इसके थोक उपभोक्ता हैं। कुछ ब्रांडेड लीची उत्पाद हैं। डिब्बाबंद जैसे उत्पाद (कैंड लीची) और लीची स्क्वैश भारतीय बाजारों में उपलब्ध हैं, लेकिन वे महंगे हैं। कुछ भारतीय सीजन के दौरान घर वाले इन वस्तुओं को बनाते हैं। लेकिन बदलती जीवनशैली के कारण यह प्रथा धीरे-धीरे लुप्त हो रही है। लीची प्रसंस्करण या संरक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें फलों को भविष्य में उपयोग के लिए एक उचित वातावरण में संग्रहीतकर इसे क्षय या खराब होने से रोका जा सकता है। लीची प्रसंस्करण के लिए हर क्षेत्र के स्वाद या पसंद का ख्याल रखना होगा और साथ में एफपीओ और पीएफए अधिनियम का अनुपालन भी आवश्यक है।

(अ) लीची के छोटे प्रसंस्करण के लिए बुनियादी इनपुट

जमीन खरीद कर निर्माण करने की जरूरत नहीं है। इसके बजाय, 2 या 3 कमरों के साथ लगभग 100 वर्गमीटर का एक बना बनाया आधार उत्पादन, भंडारण और पैकिंग के लिए पर्याप्त होता है। अधिकांश संचालन स्वःचालित हैं और इसलिए, उत्पादन क्षमता मुख्य रूप से बाजार द्वारा निर्धारित की जाती है। प्रसंस्करण में बर्नर के साथ गैस

भट्ठी, काटने और छीलने वाले उपकरण, प्लास्टिक सील मशीन, कैप सीलर, वजन तराजू आदि, स्टेनलेस स्टील के बर्तन, प्लास्टिक के जार और टब और अन्य उपकरण, बोतल धोने की मशीन, मिक्सर ग्राइंडर, विविध परिसंपत्तियों : फर्नीचर, भंडारण रैक, पैकिंग टेबल की आवश्यकता होती है। डिब्बाबंद लीची, स्क्वैश, कोर्दिअ, सिरप, आर.टी.एस. (सेवा के लिए तैयार), जैम, जेली, रस और सूखे या निर्जलित उत्पादों (नट) जैसे उत्पादों का निर्माण किया जा सकता है।

(ब) संरक्षण हेतु प्रसंस्कृत उत्पाद

(i) लीची का शीत भंडारण

लंबे समय तक लीची को अपने प्राकृतिक स्वाद और गुणवत्ता के साथ संरक्षित करने के लिए पूरे फलों को फ्रीज करना सबसे अच्छा और सबसे आसान तरीका है। फलों को छीलने के बाद बीज या बिना बीज के सिरप में शीत भंडारण किया जा सकता है। तेजी से ठंडा होने और -25° से. पर रखे जाने पर लीची के फल 12 महीने तक उत्कृष्ट स्थिति में रहते हैं।

(ii) लीची कैनिंग (डिब्बाबंद)

भारत और विदेशों दोनों में डिब्बाबंद लीची की बहुत मांग है क्योंकि ये उत्कृष्ट गुणवत्ता की होती है। शाही के परिपक्व फल, प्रारम्भिक बड़े लाल, प्रारम्भिक बीज रहित, गुलाब सुगंधित पूर्वी या बेदाना चुने जाते हैं। पूरी तरह से धोने के बाद, छिलकों को हटा दिया जाता है और चाकू की मदद से लुगदी (अरिल) को नष्ट कर दिया जाता है। खाली डिब्बे में गूदा (एरिल) की आवश्यक मात्रा भरी जाती है, जिसमें 30-35^0 ब्रिक्स की चीनी की चाशनी डाली जाती है। चीनी सिरप को 0.2% साइट्रिक एसिड के साथ मिश्रित किया जाता है और गुलाब या वेनिला एसेंस के साथ सुगंधित किया जाता है। भरे हुए डिब्बे का निकास पूरा होता है जब कैन (डिब्बे) के केंद्र में तापमान 85° से. तक पहुँच सकता है और यह तापमान पांच मिनट तक बना रहता है। ऊपरी लीड्स को फिर डबल सीमर की मदद से बंद कर दिए जाते हैं। ये सील किए गए डिब्बे 30 मिनट के लिए उबलते पानी में निष्फल (स्टर्लाइज्ड) या प्रसंस्कृत किये जाते हैं। स्टरलाइजेशन के तुरंत बाद, डिब्बों को बहते पानी में ठंडा किया जाता हैं। ठंडा करने के बाद डिब्बे को सूखे कपड़े से सूखा दिया जाता है और सूखी और ठंडी जगह पर रख दिया जाता है। भंडारण के 3 महीने बाद गुलाबी रंग का धूमिल होना मुख्य समस्या है जो धीरे-धीरे बढ़ती है और उपभोक्ताओं की अपील को कम करती है। यह संभवतः टिन एंथोसायनिन कॉम्प्लेक्स के निर्माण से जुड़ा है।

चित्र सं : 01 कैंड लीची (डिब्बाबंद लीची)

(iii) रस संरक्षण

बास्केट प्रेस की मदद से निकाले गए लीची के रस को 700 पीपीएम सल्फर डाई आक्साइड द्वारा संरक्षित किया जाता है। जूस को पहले 85° से. पर 15-20 मिनट के लिए पोस्टुराइज किया जाता है। पाश्चुरीकरण के दौरान पानी की थोड़ी मात्रा में घुलने वाले 0.2% साइट्रिक एसिड को डाला जा सकता है। ठंडा करने के बाद 0.12 प्रतिशत पोटेशियम मेटा-बाय-सल्फेट को थोड़ी मात्रा में पानी में घोलकर अच्छी तरह मिलाया जाता है। रस को फिर स्टर्लाइज्ड बोतलों में भर दिया जाता है और ठंडी और सूखी जगह में संग्रहित करते है। इस तरह के संरक्षित जूस का उपयोग विभिन्न पेय पदार्थों यानि स्क्वैश, अमृत, आरटीएस, सौहार्द और सिरप आदि की तैयारी में किया जा सकता है।

(iv) स्क्वैश

स्क्वैश को लीची के रस को चीनी, साइट्रिक एसिड और पानी के साथ मिलाकर रासायनिक रूप से 350 पीपीएम सल्फर डाई आक्साइड के साथ तैयार किया जाता है। एफ.पी.ओ. के अनुसार स्क्वैश में 25 प्रतिशत रस और कम से कम 40^0 ब्रिक्स (टी.एस.एस.) होना चाहिए। व्यंजनों में रस-1 किग्रा, चीनी-1.5 किग्रा, साइट्रिक एसिड-8 ग्राम, पानी-0.750 लीटर, पोटेशियम मेटा-बाय सल्फेट-0.06% होता है। वेनिला या गुलाब सार-15 बूँदें (0.5 मिली)। सबसे पहले शुगर सिरप को हीट एप्लीकेशन द्वारा पानी में चीनी घोलकर तैयार किया जाता है।

हीटिंग के दौरान, साइट्रिक एसिड को पानी की थोड़ी मात्रा में मिलाकर कर दिया जाता है जो सिरप के साथ मिश्रित होता है। फिर सिरप को छानने के बाद ठंडा किया जाता है। चीनी सिरप को रस के साथ मिलाया जाता है। पोटेशियम मेटा-बाय-सल्फेट पानी की थोड़ी मात्रा में मिलाकर कर तैयार स्क्वैश के साथ मिलाया जाता है। स्वाद

बढ़ाने के लिए आवश्यक मात्रा में एसेंस मिलाया जाता है। स्क्वैश को पानी से तीन बार पतला करने के बाद परोसा जाता है। स्क्वैश के रूप में इसे लंबे समय तक इसकी संगठनात्मक गुणवत्ता बनाए रखी जा सकती है। लीची स्क्वैश की ब्राउनिंग जो आमतौर पर 3 महीने के बाद कमरे के तापमान भंडारण (25-30° से.) में देखी जाती है, जिसे कम तापमान भंडारण (4-5° से.) और स्क्वैश में 100 मिलीग्राम/लीटर एस्कॉर्बिक एसिड को मिलाकर कम किया जा सकता है।

(v) लीची सीरप

एक फल सीरप आमतौर पर चीनी की एक उच्च एकाग्रता के साथ और आमतौर पर कम एसिड सामग्री के साथ फल के ठीक गूदे की एक छोटी मात्रा युक्त फल का मीठा रस है। शुगर की मात्रा अधिक होने से सीरप खराब नहीं होता है। लीची के रस का उपयोग फलों के सीरप की तैयारी में भी किया जा सकता है। लीची फल सीरप के लिए कई व्यंजनों हैं। एक नुस्खा में रस-1 लीटर, चीनी-1.5 किलोग्राम, साइट्रिक एसिड-10.4 ग्राम और सुगंध 0.5 एम एल शामिल हैं और दूसरे में रस-1 लीटर, चीनी-7 किलोग्राम, पानी-2 लीटर, साइट्रिक एसिड-28 से 56 ग्राम और सुगंध 3-12 एम एल शामिल हैं। जूस चीनी और साइट्रिक एसिड गर्मी को लागू करके सीरप में बनाया जाता है। मैल, यदि कोई हो तो हटा दिया जाता है। दूसरे नुस्खा में, पानी को गर्म करके चीनी को पहले पानी में मिला कर दिया जाता है। मैल को हटा दिया जाता है, छाना जाता है और साथ ही ठंडा किया जाता है। रस को फिर चीनी की चाशनी में मिलाया जाता है। वेनिला या गुलाब सुगंध की आवश्यक मात्रा जोड़ने के बाद, सिरप को निष्फल बोतलों में भरा जाता है और सील बंद किया जाता है। पानी के साथ उचित मात्र में मिलाने के बाद, इसे शीतल पेय के रूप में परोसा जाता है।

(vi) जैम

लीची जैम फ्रूट पल्प से तैयार किया जाता है। फ्रूट पल्प को बाहर निकाला जाता है और 1/4की मात्रा में पानी मिलाया जाता है और फिर इसे नरम बनाने के लिए गर्म किया जाता है। फिर इसे 3/4की मात्रा में चीनी के साथ पकाया जाता है। पकाने के दौरान जब तापमान 102° से. तक पहुँच जाता है, तो साइट्रिक एसिड/2 ग्राम प्रति किलो पानी की थोड़ी मात्रा में भंग कर दिया जाता है। तापमान 106° से. तक पहुँचने पर पकाना बंद हो जाता है। वाइड माउथ ग्लास जार में भरने से पहले, सोडियम बेंजोएट/0.02 प्रतिशत पानी की थोड़ी मात्रा में मिलकर जैम के साथ मिलाया जाता है। जार में भरे जाम के शीर्ष पर पिघला हुआ पैराफिन की एक परत फला दी जाती है।

(vii) लीची से किण्वित पेय

एक गुणवत्ता वाली लीची वाइन (एक किण्वित पेय), लगभग 11% शराब के साथ शराब के खमीर *(सैचरोमाइसीज सेरेविसि जाति-बायामस)* का उपयोग करके रस की किण्वन प्रक्रिया को समायोजित करके विशिष्ट रस स्वाद और उच्च पोषण मूल्य तैयार किया जा सकता है। लीची खनिज और विटामिन का एक अच्छा स्रोत होने के साथ एक विशिष्ट स्वादिष्ट, सुगंधित और आकर्षक फल है। लीची के फलों का टीएसएस लगभग 20° ब्रिक्स होता है, जिसमें 27 प्रतिशत शुगर होती है और 0.5 प्रतिशत अम्लता होती है जो शराब की तैयारी के लिए उपयुक्त है। इन के अलावा, लीची के फलों की अपनी सुगंध और स्वाद है जो शराब की गुणवत्ता को जोड़ता है। लीची वाइन के उत्पादन के लिए अधिशेष और शारीरिक रूप से क्षतिग्रस्त गैर-फल का उपयोग, उपयोगकर्ता देशों को इसके निर्यात के अलावा भारत में शराब उद्योग कृषि प्रसंस्करण क्षेत्र में मूल्य संवर्धन, आय और रोजगार सृजन के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करता है।

(viii) जेली

जेली को परिपक्व लीची के फलों से भी तैयार किया जा सकता है। रस को पहले निकाला जाता है और पेक्टिन की मात्रा का परीक्षण अल्कोहल परीक्षण द्वारा किया जाता है। पेक्टिन शक्ति के अनुसार चीनी की आवश्यक मात्रा में जोड़ा और पकाया जाता है। साइट्रिक एसिड/7 ग्राम प्रति किलोग्राम चीनी का उपयोग कम मात्रा में पानी के साथ मिलाया जाता है और पकाने के दौरान जोड़ा जाता है। अंतिम बिंदु 105° से 107° से. पर पहुँचता है। फिर पकाना बंद कर दिया जाता है और मैल को हटाने के बाद, उत्पाद को विस्तृत माउथ ग्लास जार में भर दिया जाता है। एसिड के घोल में या उच्च शर्करा सांद्रता में सुक्रोज को गर्म करने से मिठास बढ़ती है। अच्छी जेली के गठन के लिए चीनी को रस के उच्च अनुपात की आवश्यकता होती है। 18% घुलनशील ठोस पदार्थों के रस से बनी लीची जेली और 55.45 अनुपात में चीनी के साथ मिलकर एक मजबूत प्राकृतिक स्वाद और उच्च गुणवत्ता का प्रदर्शन करती है। हालांकि, लीची के रस के अनुपात में उच्च सामग्री के कारण, विनिर्माण का खर्च अधिक

है। एक अच्छी लीची की जेली को 16% या अधिक घुलनशील ठोस पदार्थों के रस से तैयार किया जा सकता है और 50:50 के अनुपात में चीनी के साथ वजन से जोड़ा जा सकता है। रस पी एच को फॉस्फोरिक एसिड के साथ पी एच 3.7 और बाद में साइट्रिक एसिड के साथ पी एच 3.2 में समायोजित किया जाना चाहिए।

इस प्रकार यह सुनिश्चित है की लीची उत्पादक स्थानीय खाद्य संसाधनों का उपयोग करके सरल खाद्य सुरक्षा और प्रसंस्करण दिशा निर्देशों को अपनाकर लीची के विभिन्न प्रसंस्कृत उत्पादों को आसानी से तैयार कर सकते हैं। साथ ही संसाधित उत्पादों को लंबे समय तक संरक्षित भी किया जा सकता है; इसके अलावा, प्रसंस्करण न केवल फल की उपलब्धता की अवधि का विस्तार करता है, बल्कि बाजार की मांग के लिए रोजगार और साथ ही अच्छी आय भी मुहैया करता है। खाद्य प्रसंस्करण और संरक्षण के सरल तरीकों को अपनाकर, किसान एवं अज के युवा अपनी आय बढ़ कर अपनी आजीविका की स्थिति में सुधार भी ला सकते है।

राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र के लीची प्रसंस्कृत उत्पाद

हिन्दी के द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।

महर्षि स्वमी दयानन्द सरस्वती

वर्मीकम्पोस्ट बनाने की विधि एवं उपयोग

विजय कुमार[1], जितेन्द्र चन्द्र चन्दोला[2] एवं संतोष कुमार सिंह[3]

[1]प्रयोगशाला तकनीशियन (मृदा विज्ञान), [2]विषय वस्तु विशेषज्ञ (उधान विज्ञान) एवं
[3]सहायक प्राध्यापक, (मृदा विज्ञान विभाग), कृषि विज्ञान केंद्र, मांझी, सारण,
डा. राजेंद्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, बिहार
E-mail: vkvijaymadhubani@gmail.com

वर्मीकम्पोस्ट जैविक खाद का एक अच्छा विकल्प है, जिसे किसान थोड़ी सी मेहनत करके अपने खेत पर केंचुओं के द्वारा बेकार वनस्पति पदार्थों को 45 से 60 दिन की अल्प अवधि में ही मूल्यवान जैविक खाद ''वर्मीकम्पोस्ट'' में बदल सकते है इसके उपयोग से भूमि में उर्वरता, उत्पादकता और भूमि के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों को लम्बे समय तक अनुकूल बनाये रखने में मदद मिलती है।

आज पूरे विश्व में बढ़ती हुई जनसंख्या एवं कृषि योग भूमि का कम होना एक गंभीर समस्या है बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ भोजन की आपूर्ति के लिए मानव द्वारा खाद उत्पादन की प्रतिस्पर्धा में अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के रासायनिक खाद का उपयोग प्रकृति के जैविक और अजैविक पदार्थों के बीच आदान प्रदान के चक्र को असंतुलित करता है, जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति बिगड़ जाती है साथ ही वातावरण प्रदूषित होता है जिसका प्रतिकूल असर सारे जीव-जंतु पर पड़ता है।

हमारे देश में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है और कृषकों का आजीविका का साधन खेती है बढ़ती जनसंख्यां को देखते हुए और आय के दृष्टि से उत्पादन बढ़ाना आवश्यक है, ज्यादा उत्पादन के लिए हमारे कृषकों को रासायनिक उर्वरकों का उपयोग करना पड़ता है जिससे सीमांत व छोटे कृषकों को फसल उत्पादन में अत्यधिक लागत लग जाती है और हमारा पर्यावरण भी प्रदूषित हो जाता है इसलिए इन सभी समस्याओं के निवारण के लिए विगत कुछ वर्षों से निरंतर वर्मीकम्पोस्ट के उत्पादन एवं उपयोग पर जोर दिया जा रहा है।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए एक प्रकार का केंचुआ का उपयोग किया जाता है केंचुआ जिन्हें आमतौर पर किसान का मित्र कहा जाता है भूमि एवं फसल दोनों के लिए लाभदायक जीव है। केंचुआ साधारणतया मिट्टी में पाया जाता है परन्तु रासायनिक कीटनाशकों, उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग से लगातार भूमि में इनकी संख्या कम होती जा रही है, इनकी संख्या को बरकरार रखने के लिए हमें जैविक खादों का प्रयोग खेतों में करना चाहिए। जैविक खाद में वर्मीकम्पोस्ट एक अच्छा विकल्प है जिसे किसान थोड़ी से मेहनत से अपने खेत पर केंचुओं के द्वारा बेकार बनस्पति पदार्थों को 45 से 60 दिन की अल्प अवधि में ही मूल्यवान जैविक खाद ''वर्मीकम्पोस्ट'' में बदल सकते हैं।

केंचुएं की मुख्य प्रजातियाँ

- ऐसेनिआ फोएटिडा (रेड अर्थवर्म)
- युडरेलिस यूजेनी (नाईट क्रावलेर)
- पेरिओनिक्स एक्सकैवेटस
- फेरिटीमा इलोंगटा

मुख्य रूप से वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन के लिए रेड अर्थवर्म को उपयोग किया जाता है क्योंकि ये प्रजाति छोटे आकार के एवं भूमि के ऊपरी सतह पर रहते हैं, जिनकी क्रियाशीलता एवं जीवन अवधि कम लेकिन प्रजनन दर अधिक होती है। यह भोजन के रूप में ग्रहण की गई कार्बनिक पदार्थ के कुल मात्रा का 5 से 10 प्रतिशत भाग शरीर की कोशिकाओं द्वारा अवशोषित कर लेता है और शेष मल के रूप में विसर्जित हो जाता है जिसे वर्मीकास्ट कहते हैं।

नियंत्रित परिस्थिति में केंचुआ को व्यर्थ कार्बनिक पदार्थ खिलाकर पैदा किये गए वर्मीकास्ट और केंचुओं के मृत अवशेष, अंडे, ककून, सूक्ष्म-जीव आदि के मिश्रण को वर्मीकम्पोस्ट या केंचुआ खाद कहते हैं। नियंत्रित दशा में केंचुओं द्वारा केंचुआ खाद उत्पादन की विधि को वर्मीकॉम्पोस्टिंग और केंचुआ पालन की विधि को वर्मीकल्चर कहते हैं।

रेड अर्थवर्म की कुछ मुख्य विशेषताएं

- बॉडी की लम्बाई : 3 से 10 से.मी.
- बॉडी का वजन : 0.4 से 0.6 ग्राम
- परिपक्व : 30 से 45 दिन
- वर्मीकम्पोस्ट रूपांतरण दरः 2.0 क्विंटल / 1500 वर्म / 2 महीना
- ककून उत्पादन : 1 प्रति दिन
- कोकून का ऊष्मायन (इन्क्यूबेशन): 20 से 23 दिन

- एक केंचुआ 17 से 25 ककून बनाता है और एक ककून से औसतन तीन केंचुआ का जन्म होता है
- ककून बनाने की छमता 6 माह तक होती इसके बाद ककून बनाने की छमता घट जाती है
- केंचुआ द्विलिंगी होते है यानि नर तथा मादा जननांग एक ही शरीर में होता है
- केंचुओं में मैथुन प्रक्रिया लगभग एक घंटा चलती है
- ककून का निर्माण लगभग 6 घंटा में पूरा होता है
- एक केंचुआ से एक वर्ष में अनुकूल प्रस्थिति में 5000 से 7000 (5.0 से 7.0 किलोग्राम) तक केंचुए प्रजनित होते है
- केंचुएं का रंग भूरा पोर्फायरिन पिगमेंट के कारण होता है
- इसके शरीर के ऊतकों में 50 से 75 प्रतिशत प्रोटीन, 6 से 10 प्रतिशत वसा, कैल्शियम, फॉस्फोरस एवं अन्य खनिज लवण पाए जाते है
- केंचुएं के सूखे हुए पाउडर में 4100 कैलोरी ऊर्जा मिलती है
- इसके शरीर में 85 प्रतिशत पानी होता है तथा ये शरीर के द्वारा ही श्वसन एवं उत्सर्जन का कार्य पूरा करता है
- मिट्टी या कचरे में रहकर ये दिन में 20 बार ऊपर से नीचे व नीचे से ऊपर भ्रमण करता है
- एक किलो केंचुआ प्रतिदिन 4 से 5 किलोग्राम कचरा खा जाता है यानि अपने वजन का लगभग 5 गुना कचरा खता है।

वर्मीकम्पोस्ट का रासायनिक संरचना

वर्मीकम्पोस्ट का रासायनिक संगठन मुख्य रूप से उपयोग में लाये गए अपशिष्ट पदार्थों के प्रकार, उनके स्त्रोत एवं निर्माण के तरीकों पर निर्भर करता है सामान्य तौर पर इसमें पौधों के लिए आवश्यक लगभग सभी पोषक तत्व संतुलित तथा सुलभ अवस्था में मौजूद होते हैं। वर्मीकम्पोस्ट में गोबर के खाद की अपेक्षा पांच गुना नाइट्रोजन, आठ गुना फॉस्फोरस, ग्यारह गुना पोटाश और तीन गुना मेगनेसियम तथा अनेक सूक्षम तत्व संतुलित मात्रा में पाए जाते हैं।

वर्मीकम्पोस्ट बनने की विधि

1. कच्चे सामग्री की तैयारी: सबसे पहले वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए कच्चा मॉल (रॉ मटेरियल) तैयार करते हैं जैसे गोबर और विभिन्न प्रकार के फसल अवशेष, घास-फूस, रसोई घर का कचरा, हरी खाद, नीम की पत्ता, इत्यादि को 3:1 के अनुपात में मिलकर 15 से 20 दिन के लिए छोड़ देते हैं जिससे इसका आंशिक अपघटन होता है साथ ही गोबर का तापमान भी कम हो जाता है।

2. गड्ढे का निर्माण: वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए सबसे पहले 6 से 8 फीट की ऊँचाई का एक छप्पर तैयार किया जाता हैं ताकि उपयुक्त तापमान एवं छाया रखी जा सके वर्मीकम्पोस्ट बनाने की क्यारी की लम्बाई सुविधानुसार, चौड़ाई 3 फीट एवं ऊँचाई 1.5 से 2.5 फीट रखा जाता हैं।

3. गड्ढे भरना: गड्ढे के सबसे निचले हिस्से में सबसे पहले टुकड़ा किया हुआ फसल अवशेष, नीम की पत्ती, रसोई घर का कचरे, सभी को मिलकर 15 से 20 से.मी. की तह बिछाया जाता है साथ ही हल्की पानी की छिड़काव भी कर दिया जाता है।

इसके ऊपर 15 से 20 दिन पुराना

वर्मीकम्पोस्ट का रासायनिक संगठन

Øekd	Ekkud	ek=k
1	पी एच	6.8
2	ई सी (mmhos/cm)	11.80
3	आर्गेनिक कार्बन	11.88%
4	आर्गेनिक मैटर	20.46%
5	सी : एन अनुपात	11.64%
6	कुल नाइट्रोजन	0.60-1.20%
7	फॉस्फोरस	0.15-0.56%
8	पोटाशियम	0.40-0.70%
9	कैल्शियम	2.0-4.0%
10	सोडियम	0.02%
11	मेगनेशियम	0.46%
12	आयरन	7563 मिलीग्राम/किलोग्राम
13	जिंक	278 मिलीग्राम/किलोग्राम
14	मैंगनीज	475 मिलीग्राम/किलोग्राम
15	कॉपर	27 मिलीग्राम/किलोग्राम
16	बेरोन	34 मिलीग्राम/किलोग्राम
17	एल्युमीनियम	7012 मिलीग्राम/किलोग्राम

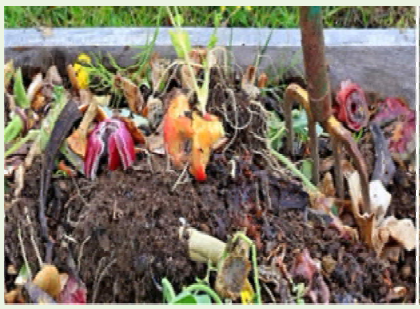

तैयार आंशिक विघटित कच्चे सामग्री को डाल दिया जाता है मुख्यतः 2.0 से 2.5 क्विंटल कच्चे सामग्री की जरूरत पड़ती है सामान्य गड्ढे (6 फीट लम्बाई, 3 फीट चौड़ाई और 2.5 फीट ऊँचाई) के लिए।

4. केंचुओं का संचयनः गड्ढे भरने के बाद केंचुओं को आंशिक विघटित कच्चे सामग्री के ऊपरी सतह पर मिलाया जाता है। सामान्यतः 1500 से 2000 संख्या (1.5 से 2.0 किलोग्राम) केंचुओं की अवश्यकता परती है एक सामान्य गड्ढे के लिए, इसके बाद बोरा से ढक दिया जाता है और पानी का छिड़काव कर दिया जाता है।

वर्मी पिट (गड्ढे) को प्रतिदिन पानी का छिड़काव करना चाहिए ताकि 30 से 40 प्रतिशत नमी बरकरार रहे 30 दिन के बाद मटेरियल को पलट दिया जाता है जिससे की उपयुक्त वायु का संचार हो सके। 45 से 60 दिन के अंदर ही गोबर और गोबर मिश्रित घास-फूस, फसल अवशेष वर्मीकम्पोस्ट में बदल जाता है जो गंध रहित चाय के दाने की तरह काले रंग का होता है।

5. वर्म कास्टिंगः केंचुएं डाले हुए कच्चे सामग्री को गड्ढे में नीचे से खाना शुरू करता है और खाते-खाते ऊपर की ओर आता है। जब वर्मीकम्पोस्ट तैयार हो जाता है इसकी गतिविधि ऊपर के सतह पर ज्यादा दिखाई देता है, तब पानी का छिड़काव बंद कर दिया जाता है। 3 से 4 दिन के बाद वर्मीकम्पोस्ट का एक ढेर तैयार किया जाता है ज्यों ज्यों ढेर सूखता जाता है वर्म नीचे के सतह जहाँ नमी बानी रहती है वहाँ पर चला जाता है, फिर ऊपर से 3/4 हिस्सा वर्मीकम्पोस्ट का लेकर चलनी से छान लेते हैं बचे हुए एक हिस्से को नए वर्मी पिट में डाल दिया जाता है क्योंकि इस हिस्से में केंचुओं तथा ककून की संख्या अत्यधिक होती है। इस तरह वर्मीकम्पोस्ट और वर्म को अलग कर लिया जाता है।

वर्मीकम्पोस्ट इकाई लगाने में खर्च एवं मुनाफा

iekuk	çfr o"k yxHkx ykxr	lkykuk yxHkx ykHk	ykxr ykHk vuqikr
छोटे पैमाने पर	52000	90000	1:1.73
मध्यम पैमाने पर	100000	185000	1:1.85
बड़े पैमाने पर	225000	450000	1:2.00

सावधानियाँ

- पिट की सतह सघन होना चाहिए जिससे की वर्म मिट्टी में नहीं जा सके।
- 15-20 दिन पुराना गोबर ही उपयोग में लाना चाहिए।
- कार्बनिक अवशिष्ट पदार्थ में कोई दूसरा पदार्थ जैसे प्लास्टिक, केमिकल्स, पेस्टिसाइड, मेटल आदि नहीं होना चाहिए।
- वर्मी पिट में नमी हमेशा 30 से 40 प्रतिशत होना चाहिए साथ ही 18 से 25 डिग्री सेल्सियस तापमान होना चाहिए।
- वर्मी पिट को चिट्टी के आक्रमण से बचाना चाहिए।

फसल में उपयोग की मात्रा

- अनाज फसल : 5 टन प्रति हेक्टेयर
- सब्जी फसल : 7 टन प्रति हेक्टेयर
- फलदार वृक्ष : 3 से 5 किलोग्राम प्रति पौधा
- गमले वाले पौधे : 100 से 200 ग्राम प्रति गमला

अतः हम कह सकते है कि वर्मीकम्पोस्ट को बनाना एवं उपयोग करना किसानों के लिए बहुत आसान है तथा इसके उपयोग फसलों के लिए वरदान साबित हो रहा है।

लीची की बेहतर उत्पादकता और गुणवत्ता के लिये एनआरसीएल माइक्रोबियल कंसोर्टियम

विनोद कुमार

वरिष्ठ वैज्ञानिक

भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर-842002 (बिहार)

मृदा सूक्ष्मजीव आकार में इतने छोटे होते हैं की आँखों से दिखाई नहीं देते पर मृदा उर्वरता एवं कृषि उत्पादकता में बहुत बड़ी भूमिका निभाते हैं। अक्सर ये एकल कोशिकाओं के रूप में रह सकते हैं, हालांकि कई कोशिका के उपनिवेश भी बनाते हैं। इन जीवों की अलग-अलग कोशिकाओं को देखने के लिए एक माइक्रोस्कोप की जरूरत होती है। मृदा के ऊपरी भाग (1-10 सेमी.) में सूक्ष्मजीवों की संख्या अधिक होते हैं, क्योंकि वहाँ इनके लिये भोजन के स्रोत बहुतायत में होते हैं। ये पौधों की जड़ों (राइजोस्फीयर) के बगल में स्थित क्षेत्र में विशेष रूप से प्रचुर मात्रा में होते हैं, जहां जड़ों द्वारा छोड़े गए कोशिका अवशेष और रसायन भोजन स्रोत प्रदान करते हैं। ये जीव कार्बनिक पदार्थों के प्राथमिक अपघटक (डीकम्पोजर) हैं, लेकिन ये अन्य कार्य भी करते हैं, जैसे कि बढ़ते पौधों की मदद के लिए नाइट्रोजन प्रदान करना, रोगकारक जीवों को कम करना, हानिकारक रसायनों (टॉक्सिंस) को अहानिकारक में परिवर्तित करना, और ऐसे उत्पाद तैयार करना जो पौधे के विकास को बढ़ाते हैं।

लीची वृक्ष के साथ माइकोराइजा सहजीवी कवक (सूक्ष्मजीव) का सम्बंध अनादिकाल से है। माइकोराइजा के अलावा, पोषण और पौधों के स्वास्थ्य के लिए प्रमुख लाभकारी सूक्ष्मजीव संसाधनों में उन्मुक्त नाइट्रोजन स्थिरीकरण जीवाणु- एजोटोबैक्टर और जैवनियंत्रक एवं जैवउर्वरक कवक- ट्राइकोडर्मा प्रमुख हैं। ये जीवाणु स्वस्थ मिट्टी और लीची वृक्ष की उत्पादकता के लिए आवश्यक है। आमतौर पर, ये सूक्ष्मजीव प्रत्यक्ष रूप से संसाधन अधिग्रहण (नाइट्रोजन, फास्फोरस और आवश्यक खनिज लवण) में सहायता कर पौधे के विकास को बढ़ावा देते हैं या वृद्धि नियामक हॉरमोन के स्तर को विनियमित कर विकास को बढ़ावा देते हैं, या परोक्षतः जैवनियंत्रक के रूप से पौधों की वृद्धि और विकास पर विभिन्न रोगजनकों के निरोधात्मक प्रभाव को कम करते हैं। ये सूक्ष्मजीव पौधों की प्रतिरक्षा क्षमता को भी बढ़ाते हैं और इस प्रकार पौधे रोगजनकों से खुद का बचाव करने में सक्षम हो जाते हैं। सारांश के तौर पर कहा जा सकता है कि ये पौधों के विकास की समग्र कार्यविधि (फिजियोलॉजी) को प्रभावित करते है। लीची के मामले में, इनका अनुप्रयोग पौधों के विकास में बढ़ोत्तरी के साथ-साथ उत्पादकता और लीची फल की गुणवत्ता को बढ़ाने में सहायक पाये गये हैं।

एनआरसीएल माइक्रोबियल कंसोर्टियम

यह 'माइक्रोबियल कंसोर्टियम' तीन सूक्ष्मजीवों नामतः, *अर्बस्कुलर माइकोराइजा* (एएम), *एजोटोबेक्टर क्रोकोक्कम* (एजेड) और *ट्राइकोडर्मा विरिडे* (स्ट्रेन एनआरसीएल टी-01) (टीआर) के आनुपातिक मिश्रण से बना कैरियर आधारित उत्पाद है। इसमें एएम की दो प्रजातियां शामिल हैं - *ग्लोमस मोसी* और *ग्लोमस फासिकुलेटम*, जो मँडुआ (*इलूसिन कोराकेना*) की उपनिवेशित जड़ों के टुकड़े और मिट्टी के मिश्रण के रूप में, जिसमें 25-30 बीजाणु प्रति ग्राम होते हैं, डाली गई है। एजेड और टीआर की न्यूनतम कॉलोनी बनाने वाली इकाई (सीएफयू) प्रति ग्राम 1×10^6 है।

अरबसकुलर माइकोराइजा के बीजाणु, एजोटोबैक्टर की कॉलोनी और ट्राइकोडर्मा के कोनिडियोफोर एवं कोनिडिया (बायें से दायें)

लीची में प्रयोग के लिए 'एनआरसीएल माइक्रोबियल कंसोर्टियम' का विमोचन

वृद्धि, उत्पादकता एवं गुणवत्तायुक्त फलों के उत्पादन के लिए नई तकनीकी 'एनआरसीएल माइक्रोबियल कंसोर्टियम' का विमोचन दिनांक 30 नवम्बर 2018 को आयोजित "लीची उत्पादकता एवं उपयोग बढ़ोत्तरी हेतु राष्ट्रीय संवाद" कार्यक्रम में किया गया। वर्तमान में, राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुजफ्फरपुर में किसानों के लिए ट्रायल पैक के रूप में यह उपलब्ध है। बड़े पैमाने पर तत्काल अनुप्रयोगों के लिए किसान अर्बस्कुलर माइकोराइजा और एजोटोबैक्टर भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बैंगलोर या किसी अन्य शोध संस्थानों से एवं ट्राइकोडर्मा राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर से प्राप्त कर सकते हैं।

अनुप्रयोग की विधि

- **वयस्क फल देनेवाले वृक्ष में:** एएम 250 ग्राम/वृक्ष, एजोटोबैक्टर 100 ग्राम/वृक्ष और ट्राइकोडर्मा 100 ग्राम/वृक्ष, 5 किलोग्राम सड़ी गोबर की खाद या वर्मीकम्पोस्ट के साथ मिश्रित कर प्रति वृक्ष की दर से सक्रिय जड़ क्षेत्र में डालें। इसका दो बार प्रयोग करने की अनुशंसा की जाती है- पहला, अगस्त में (बरसात के अंत के बाद) और दूसरा, फरवरी में (फूलों की शुरूआत में)।
- **नर्सरी में उच्च गुणवत्ता पौधे तैयार करने के लिये:** 100 किग्रा फिलिंग मिश्रण में कंसोर्टियम के एक पैकेट की सामग्री {एएम (1 किग्रा), एजोटोबैक्टर (500 ग्राम), ट्राइकोडर्मा (500 ग्राम)}, डालें और इसे अच्छी तरह मिला लें। एयर-लेयर गूटी (पौधा) के रोपण के समय इस मिश्रण की 1 किलोग्राम, पौध-थैला में ऊपरी 6 सेंटीमीटर में भर दें, और फिर पौधा लगायें।

अनुप्रयोग की लागत

कंसोर्टियम के एक बार प्रयोग की लागत 36-40 रूपए/वयस्क वृक्ष और नर्सरी में 1.80-2.00 रूपये/पौधा होती है। कंसोर्टियम के 2 किलाग्राम के पैक का मूल्य लगभग 180 रूपए है।

अनुप्रयोग से लाभ

लीची में इस कंसोर्टियम का अनुप्रयोग मिट्टी और पौधों के स्वास्थ्य को बनाये रखने में बहुत प्रभावी है। इस तकनीक को अपनाने से बड़े फलदार वृक्षों वाले लीची बागवान के साथ-साथ नर्सरी तैयार करने वाले लोग भी लाभान्वित होंगे। यह उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य की रक्षा भी करेगा। इसके प्रयोग से होनेवाले लाभ निम्नलिखित हैं:

- यह विकास को बढ़ाता है, रोगजनकों के हमले के खिलाफ पौधे की प्रतिरोधकता एवं उपज में वृद्धि के साथ-साथ गुणवत्तायुक्त फलों का प्रतिशतता बढ़ाता है।
- यह जड़ तत्र के बाहरी भाग का विस्तार करता है जिससे कि कवक सूत्र अधिक गहराई में जाकर पोषक तत्वों (फास्फोरस, नत्रजन, पोटेशियम, जिंक तथा सल्फर) को मृदा में अवशोषित करके उनका संचयन कवक सूत्रों के मेन्टल/अर्ब्स्टल्स में करते हैं।
- यह कुछ वृद्धि कारकों (आक्जिन, साइटोकाइनिन एवं जिबरालिन्स) तथा विटामिन का स्राव करते हैं जिससे पौधों की वृद्धि होती है।
- यह कुछ फफूंदनाशक पदार्थों का स्राव करते हैं जो कि *फायटोप्थोरा, पाइथीयम, राइजोक्टोनिया, फ्यूजैरियम* जैसे रोगकारक कवकों के लिये हानिकारक होते हैं, जबकि पौधे के लिये लाभकारी होते हैं। इस प्रकार पौधों को हानिकारक रोगों से बचाता है।
- माइकोराइजा वृक्ष दूसरे वृक्षों में

माइकोराइजा के अनुप्रयोग से एनआरसीएल प्रायोगिक फार्म पर लीची के पौधे की वृद्धि पर प्रभाव

माइकोराइजा के अनुप्रयोग से हुई पौधे की जड़ विस्तार एवं घनत्व पर प्रभाव

माइकाराइजल सहजीविता स्थापित कर लेते हैं तथा दूसरे वृक्षों में पोषक तत्वों की कमी होने पर ये उस वृक्ष में पोषक तत्वों का स्थानान्तरण कर देते हैं।

- माइकोराइजा के कवक सूत्र मृदा में गहराई तक फैल जाते हैं तथा सूखाड की स्थिति में पौधों के लिये पानी की भी आपूर्ति करते हैं।

सीमायें

इसका कल्चर कृत्रिम रूप से तैयार नहीं हो पाता है जैसा कि राइजोबियम कल्चर का सहज उत्पादन होता है, इसका मुख्य कारण ओब्लिगेट किस्म का स्वभाव होना है। अतः इसे गुणित करने के लिये जीवित जड़ों वाली खड़ी फसल की आवश्यकता होती है। इस फसल का जीवन चक्र लगभग 60 दिनों का होना चाहिये तभी कल्चर के रूप में तैयार हो पाता है।

अरबसकुलर माइकोराइजा की ऑन-फार्म उत्पादन पद्धति

किसान भाई स्वयं अपने फार्म पर *माइकोराइजा* वर्धित कर विपुल मात्रा में तैयार कर खेतों में अनुप्रयोग कर सकते हैं। *अर्बस्कुलर माइकोराइजा* का स्टारटर कल्चर किसी अनुसंधान संस्थान/केंद्र या व्यवसायिक कंपनी से प्राप्त कर लें। गुणित करने के लिये थैली (फिलिंग बैग), गमला या 1×1 मीटर आकार का नर्सरी क्षेत्र भी प्रयोग में लाया जा सकता है। गुणित करने के लिये मेजबान पौधे मडुआ (रागी), रोड ग्रास, बेहिया ग्रास या मकई का प्रयोग किया जाता है।

सर्वप्रथम प्लास्टिक फिलिंग बैग या मिट्टी का गमला लें। इसमें विसंक्रामित फिलिंग मिश्रण (स्टेरिलाईज्ड पोटिंग मिक्सचर) 1:3 मिट्टी:रेत (मात्रा के आधार) को भरें। इसके साथ-साथ थोड़ी मात्रा में अच्छी कम्पोस्ट और वर्मीक्यूलाईट भी मिलायें जो विसंक्रमित हों। विसंक्रमण के लिए सौर्यीकरण और फोर्मलीन का प्रयोग करें। स्टार्टर कल्चर को मिक्सचर की ऊपरी सतह पर लगभग 3-4 से.मी. अंदर तक मिला दें जहाँ बीज बुआई करनी है। अब हर गमले/बैग में 4-10 बीज (आकारनुसार) बोयें एवं पानी का फुहारा कर दें। जितनी जल्दी हो सके ग्राउंड क्षेत्र को कवर करके इनोकुलम उत्पादन क्षेत्र स्थापित करें। यह एक साफ, खुला क्षेत्र प्रदान करेगा जो रखरखाव को आसान बनाता है। यह खरपतवारों को थैलियों के चारों ओर बढ़ने और खरपतवार के बीज से इनोकुलम को दूषित करने से रोकेगा। अच्छी देख रेख में पौधों को कम से कम 60 दिन या फूल आने तक बैग/गमले में बढ़ने दें एवं देखरेख करते रहें जैसे मुख्य फसल की देखरेख की जाती है। इसके बाद

मेजबान पौधेः मडुआ (रागी) - बायें, एवं रोड ग्रास - दायें

माइकोराइजा का ऑन-फार्म उत्पादन। पीजीपीआर (*एजोस्पिरिलम, एजोटोबेक्टर*) माइकोराइजा के वृद्धि में मदद करते हैं और जड़ विकास को भी गति प्रदान करते हैं। इसे साथ में डालने की अनुसंशा की जाती है।

सिंचाई पानी देना बंद कर दें, या नहीं तो पौधों के जमीन से ऊपरी हिस्से को काटकर हटा दें। अब थैले/गमले की मिट्टी-मिश्रण एवं जड़ों को हवा में छांव में रखकर सूखा लें और फिर इसे बैग में भरकर रख लें। वैकल्पिक तौर पर, जड़ों से मिट्टी झाड़ दें और जड़ों को हवादार छांव वाले जगह पर सुखायें। सूखे जड़ों को फिर 1 सेमी. लंबाई के आकार में कैंची से काटकर डब्बे या साफ नई बैग में भरकर रख लें । इस तरह माइकोराइजा कल्चर गुणित होकर बड़े पैमाने पर अनुप्रयोग के लिए तैयार है।

''भारत में 70 करोड़ लोग हैं, जो खेती पर जिंदा हैं मतलब किसानों की संख्या 70 करोड़ है, उनको हर साल अपने खेतों में 5 लाख करोड़ का जहर डालना पड़ता है, जो बाद में हमारे ही पेट में आ रहा हैं। यदि हम उनको देसी खेती करने का ये आसान सा फार्मूला समझा दे, तो हम हर साल उनका और देश का 5 लाख करोड़ बचा सकते है। और ये खाने से लोगों को जो बीमारीयां हो रही हैं, और इलाज पर खर्चा भी बचा सकते है।''

राजीव दीक्षित

एकल कृषि बनाम जैव-विविधता आधारित संपोषणीय कृषि

अभय कुमार[1], प्रतिभा सिंह[2], नारायण लाल[1], अलोक कुमार गुप्ता[1] एवं इवनिंग स्टोन मर्बोह[1]

[1]भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर (बिहार)
[2]महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, पूर्वी चंपारण, मोतिहारी (बिहार)

कृषि में वैश्विक रूझान-हरित क्रांति प्रौद्योगिकी और बाजार उन्मुखीकरण की शुरूआत, मशीनीकरण, खेती में गहनता, विशेषज्ञता, संकरण, जैव प्रौद्योगिकी और उदारीकरण और कृषि व्यापार का वैश्वीकरण-सभी-उच्च-इनपुट मोनोकल्चर/एकल कृषि (मोनोकल्चर) के विस्तार के द्योतक हैं। यह कृषि के पारिस्थितिक रूप पर आघात है और इसलिए दीर्घकालिक खाद्य सुरक्षा को खतरा है। इस लेख में, हम मोनोकल्चर (एकल कृषि) के नकारात्मक प्रभाव की समीक्षा करते हैं, विशेष रूप से वार्षिक खाद्य फसलों द्वारा, और क्या क्या विकल्प उभर कर आए हैं।

विस्तारशील एकल कृषि

जब भी किसान बाजार उत्पादन पर ध्यान केंद्रित करते हैं और रासायनिक-कृषि (एग्रोकेमिकल) मॉडल को अपनाते हैं, तो उच्च-इनपुट मोनोकल्चर प्रधान हो जाता है। न केवल विभिन्न फसलों और जानवरों की संख्या, बल्कि आनुवंशिक विविधता भी घट जाती है। एग्रोकेमिकल्स का बढ़ता उपयोग खेतों में और व्यापक वातावरण में, मिट्टी पर और ऊपर प्राकृतिक जैव विविधता को गंभीर रूप से प्रभावित करता है। भूमि के विस्तार और समतल करने से प्राकृतिक सूक्ष्मजीवों का नुकसान होता है और विविधता में और कमी आती है।

चरम मामलों में जहाँ साल-दर-साल भूमि पर एकल फसलों का उत्पादन होता है, जैसा कि कई पश्चिमी और कुछ दक्षिणी देशों जैसे भारत, फिलीपींस और बांग्लादेश में होता है, फलस्वरूप बड़े पैमाने पर खेती और अंतहीन उच्च इनपुट मोनोकल्चर होते हैं। तकनीकी, आर्थिक और राजनीतिक ताकतें कृषि को मोनोकल्चर की ओर ले जा रही हैं। इस तरह की प्रणालियों को बड़े पैमाने की अर्थव्यवस्थाओं द्वारा समर्थन प्राप्त है और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में प्रतिस्पर्धा करने के लिए राष्ट्रीय कृषि की क्षमता में महत्वपूर्ण योगदान देता है। फिलीपींस में गन्ना मोनोकल्चर पर मामला इस बात का अच्छा उदाहरण देता है कि किस तरह से मोनोकल्चर जैविक और आर्थिक विविधता को कम करता है, प्राकृतिक संसाधनों को कम करता है और छोटे किसानों को प्रभावित करता है।

गंभीर परिणाम

यद्यपि इस प्रकार के कृषि विकास ने वैश्विक जनसंख्या वृद्धि से अधिक उत्पादन में वृद्धि करना संभव बना दिया है, लेकिन इस बात के प्रमाण बढ़ रहे हैं कि एकल कृषि यदि जारी रखा जाए, तो इससे खाद्य सुरक्षा, ग्रामीण गरीबी और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण पर इसके नकारात्मक प्रभाव लाभ पर हावी होंगे। उदाहरण के लिए कई प्रायोगिक भूखंड और प्रक्षेत्र से प्राप्त साक्ष्य संकेत देते हैं कि धान और गेंहूँ, जो हरित क्रांति के लिए जिम्मेदार थे, सर्वोत्तम प्रबंधित भूखंड पर गहन फसल के तहत अनाज के पैदावार में गिरावट दर्ज की गई। कुछ स्थानों पर, पैदावार वास्तव में गिरावट की ओर अग्रसर हैं। अधिकांश बड़े पैमाने पर कृषि प्रणालियां खेत के घटकों के खराब संरचित संयोजन को प्रदर्शित करती हैं, जिसमें फसल उद्यमों और मिट्टी, फसलों और जानवरों के बीच लगभग कोई संबंध या पूरक संबंध नहीं होते हैं। पोषक तत्वों, ऊर्जा, पानी और कचरे के चक्र अधिक खुले हो गए हैं जिससे पोषक तत्वों को पुर्नवीनीकरण करना मुश्किल हो गया है। इसलिए, ये प्रणालियाँ अपने संसाधनों के उपयोग में बहुत अक्षम हैं। उच्च पैदावार बाहरी आदानों के उपयोग को बढ़ाकर प्राप्त किया जाता है और इससे उनकी दक्षता में कमी आती है और इसलिए प्रदूषण में वृद्धि होती है। जिस प्रकार से विकासशील देशों में कीटनाशकों का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है, लोगों और पर्यावरण के स्वास्थ्य पर उनका नकारात्मक प्रभाव में इजाफा हो रहा है।

जैसे-जैसे विशिष्ट फसलें अपने 'प्राकृतिक' सीमाओं से परे उच्च कीट क्षमता वाले क्षेत्रों में विस्तारित होती हैं, या जहाँ सीमित पानी की व्यवस्था हो,

या कम उर्वरता वाली मिट्टी में पैदावार लेनी हो, तो सीमित कारकों को दूर करने के लिए और अधिक मात्रा में गहन रासायनिक नियंत्रण की आवश्यकता होती है। उच्च-इनपुट मोनोकल्चर जीवाश्म ऊर्जा पर निर्भर करते हैं और मिट्टी के कार्बनिक पदार्थों की कमी को जन्म देते हैं, जो बदले में जलवायु परिवर्तन में दृढ़ता से योगदान करते हैं। कृषि उत्पादों की कम कीमतें शहरी आबादी के लिए विशेष रूप से फायदेमंद थीं, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में समान प्रभाव नहीं देखी गई है। दुनिया में कई जगहों पर औसतन लगभग 50% ग्रामीण आबादी गरीब है। सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्र उप-सहारा अफ्रीका और दक्षिण एशिया हैं।

मोनोकल्चर के आहार पर परिणाम अभिप्रायपूर्ण हैं। कम फसल और प्राकृतिक जैविक विविधता के कारण आहार की विविधता में कमी आई है। अधिक मक्का, चावल या गेहूं खाने से वास्तव में सूक्ष्म पोषक कुपोषण में वृद्धि हुई है, विशेष रूप से हरित क्रांति क्षेत्रों में, जिसे 'छिपी हुई भूख' कहा जाता है।

लगभग दो-तिहाई कृषि भूमि पिछले 50 वर्षों में क्षरण, स्तालिनकरण, संघनन, पोषक तत्वों की कमी, जैविक क्षरण या प्रदूषण से फाकी हद तक बर्बाद हो गई है; इनमें से लगभग 40% भूमि अप्रत्यादेय रूप से क्षीण हैं। अधिक जटिल कृषि पारिस्थितिकी तंत्रों के विपरीत, उच्च-इनपुट मोनोकल्चर-पारिस्थितिक और आर्थिक मूल्य के कई उत्तरदायित्व की भूमिका को निभाने में सक्षम नहीं हैं।

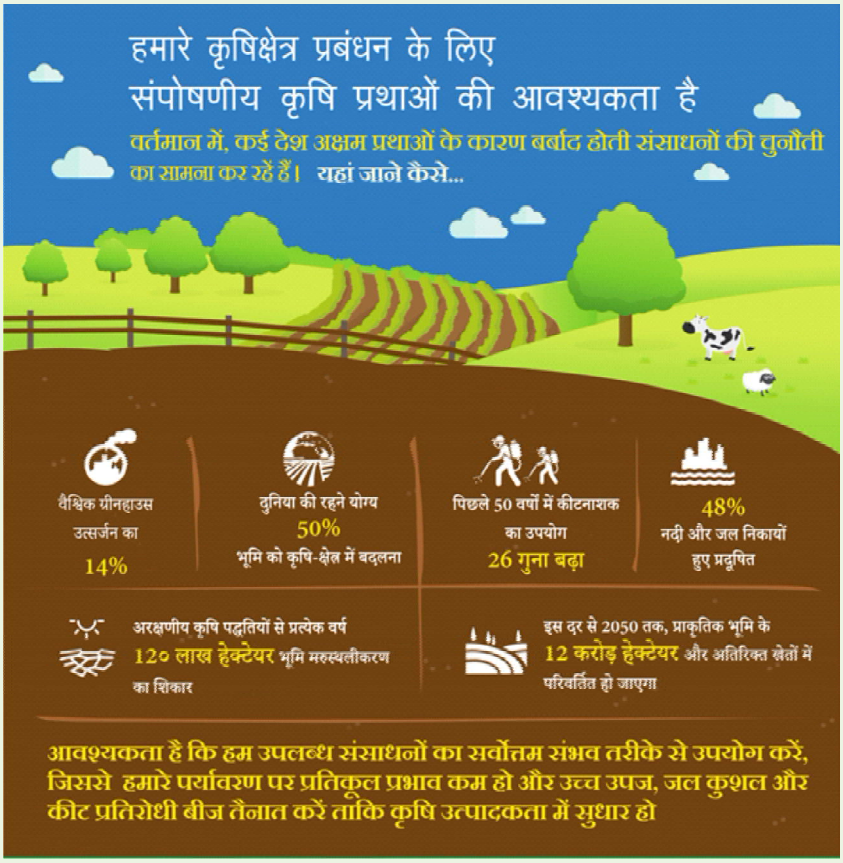

यदि हम संसाधन उपयोग के वर्तमान स्वरूप को जारी रखने के लिए चुनते हैं, तो कृषि-पारिस्थितिकी प्रणालियों से हमें प्राप्त लाभ के आकारिक मितव्ययिता की क्षमता में भारी गिरावट का सामना करना पड़ेगा- जैसे स्वच्छ जल से लेकर स्थिर एवं सहायक जलवायु, ईंधन की लकड़ी से लेकर खाद्य फसलें, लकड़ी से लेकर वन्यजीवों के रहने तक।

धारणीय विकल्प

दुनिया में कई जगहों पर यह पहले से ही हो रहा है। आर्थिक और पारिस्थितिक आवश्यकता के मद्देनजर, किसान और विकास के तरफदार उच्च-इनपुट मोनोकल्चर से दूर हटने की कोशिश कर रहे हैं।

विभिन्न दृष्टिकोणों का पालन किया जा रहा है, उदाहरण के लिए- संरक्षणछित कृषि (कन्जरवेशन एग्रीकल्चर), सदाबहार क्रांति (एवरग्रीन रिवोल्यूशन), कृषि पारिस्थितिकी (एग्रोइकोलाजी), पर्माकल्चर (Permaculture), पुनर्योजी (Regenerative) या जैविक कृषि (Organic Agriculture)। इन दृष्टिकोणों के बीच महत्वपूर्ण अंतर हैं, लेकिन इन सभी में एक आम भाजक हैः संसाधन संरक्षण।

वर्णित बदलाव निम्नलिखित हैंः एग्रोकेमिकल्स का कम और अधिक कुशल उपयोग, जीवाश्म ऊर्जा, सिंचाई जल और बीजय मिट्टी के कार्बनिक पदार्थों और बायोमास में कार्बन का भंडारण (जो जलवायु परिवर्तन को कम करता है); मृदा क्षरण में कमी लाता है। यह अधिक उत्पादन के साथ-साथ, श्रम एवं अन्य लागत में काफी कमी होती है। यह धान-गेहूं में शून्य जुताई (zero tillage) उत्पादन पद्धति, धान उत्पादन के

पारिस्थितिक गहनता, धान, गन्ना, मूंगफली और कपास के उत्पादन के विविधीकरण के लिए सटीक बैठता है। यह आम धारणा के विपरीत है।

मोनोकल्चर या पॉलीकल्चर?

सवाल यह है कि पारिस्थितिक स्थिरता हासिल करने के लिए किस प्रकार की जैविक विविधता की आवश्यकता है? कई प्राकृतिक घास मोनोकल्चर के मध्य, पॉलीकल्चर (polyculture) लंबे समय तक चल सकने वाला अनाज उत्पादन का एक साधन-एक ध्येय है। वर्तमान उच्च-इनपुट मोनोकल्चर की उत्पादकता, स्थिरता और पारिस्थितिक संधारणीयता में सुधार के लिए किसान इन प्राकृतिक मोनोकल्चर से क्या सीख सकते हैं?

एकल फसलों में उच्च फसल से जुड़ी जैव-विविधता (biodiversity) के माध्यम से, मिट्टी में और साथ ही, खेत में और इसके बाहर भी आत्म-नियमन होता है। यह संबंधित जैव-विविधता ही है जो उच्च-इनपुट मोनोकल्चर में प्रभावित और कम होती है, इसके कारण है- एग्रोकेमिकल्स और बड़े पैमाने पर गहन जुताई। मामलों से पता चलता है कि उच्च उत्पादकता और कम नुकसान और निम्न लागत इन तौर-तरीकों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है: विभिन्न किस्मों का संयोजन उदाहरणार्थ- चावल में; अंतर-फसल के द्वारा उदाहरणार्थ- कपास, अनाज, फलियां और तिलहन में, जैविक मृदा (मिट्टी) प्रबंधन या मछली, सब्जियों और पेड़ों के पुनर्चक्रण द्वारा धान उत्पादन का विविधीकरण द्वारा। पारंपरिक और पारिस्थितिक किसानों के अनुभवों से बहुत कुछ सीखा जा सकता है कि कैसे ये किसान खेती का प्रबंधन करते हैं, उदाहरणार्थ- कालाहांडी, उड़ीसा और माजुली, असम के विपरीत परिस्थिति में खेती करते पारंपरिक किसानय या बेंगलुरू में नारायण रेड्डी जैसे पारिस्थितिक किसान। क्या वे प्राकृतिक मोनोक्रॉपिंग की नकल करते हैं या उत्पादकता, स्थिरता और संधारणीयता बढ़ाने के लिए वे जानबूझकर अन्य फसलों के साथ वार्षिक अनाज को मिलाते हैं?

ये किसान अपनी फसलों का प्रबंधन कैसे करते हैं और वे सफल क्यों होते हैं, जैसे यह जिज्ञासा का विषय है कि कैसे और क्यों मेडागास्कर में पारिस्थितिक किसानों को हरित क्रांति के किसानों की तुलना में अधिक धान की पैदावार मिलती है? श्री विधि (System of Rice Intensification) की प्रणाली को अब कई अन्य देशों में भी सफलतापूर्वक आजमाया जा रहा है। अन्य अनाज, जैसे गेहूं, बाजरा, शर्बत का उत्पादन इसी तरह किया जा सकता है।

गंगा के मैदानी इलाकों में मौजूद धान-गेहूं फसलों जहाँ शून्य-जुताई (zero tillage) पद्धति से फसल ली जाती है, वहाँ अगर क्लोवर या अन्य लेग्युमिनस शरण फसलों (cover crop) का रिले फसल (relay crop) के रूप में प्रवेश उपयोग रोचक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

पारिस्थितिक दृष्टिकोण की जरूरत

संसाधन संरक्षण में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। सबसे पहली और सबसे महत्वपूर्ण, जरूरत यह है कि हम (कृषि) पारिस्थितिकी तंत्र पुनर्विभाजन को कैसे देखें, और इसे मानव अस्तित्वता से स्वयं को कैसे जोडें। 'पारिस्थितिक तंत्र दृष्टिकोण' अपनाने का अर्थ है कि हम जमीन और संसाधन के उपयोग पर अपने निर्णयों का मूल्यांकन करते हैं कि वे जीवन को बनाए रखने के लिए पारिस्थितिक तंत्र की क्षमता को कैसे प्रभावित करते हैं- न केवल मानव कल्याण, बल्कि पौधों, जानवरों और प्राकृतिक प्रणालियों की स्वास्थ्य और उत्पादक क्षमता भी।

कृषि-पारिस्थितिकी (Agroecology) पारिस्थितिकी प्रणालियों की विस्तृत समझ और मिट्टी, पानी, पौधों, जानवरों और किसानों की परस्पर जटिल क्रिया पर आधारित है; इसमें पूरे खेत और परिदृश्य प्रणाली शामिल है, और पारंपरिक फसल पारिस्थितिकी दृष्टिकोण की तुलना में कहीं अधिक समग्र है। इसके लिए वैज्ञानिक उन्मुखीकरण की जरूरत है। संक्षेप में, एग्रोकोसिस्टम का इष्टतम व्यवहार विभिन्न जैविक और अजैविक घटकों के बीच परस्पर क्रिया के स्तर पर निर्भर करता है। इस कार्यात्मक विविधता को इकट्ठा करके अनेक कर्तृत्ववाद को शुरू करना संभव है, जो इन कृषि पारितंत्र प्रक्रियाओं का आलम्बन करते हैं। जैसे- मृदा में जीव अन्योन्यक्रिया प्रभाव की सक्रियता, पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण जैसे पारिस्थितिक सेवाएं प्रदान करके, लाभकारी आर्थ्रोपोड और प्रतिपक्षी की वृद्धि, और इसी तरह इत्यादि। आज, प्रथाओं और प्रौद्योगिकियों का एक विविध चयन उपलब्ध है, हालांकि वे प्रभावशीलता के साथ-साथ रणनीतिक मूल्य में भिन्न होते हैं।

मोनोकल्चर को टिकाऊ बनाना न केवल जैविक समकक्षों द्वारा रासायनिक आदानों की बदले जगह लेना है, बल्कि किसान के नेतृत्व वाली एक व्यवस्थित रूपांतरण प्रक्रिया है। इसके लिए कृषिपारितंत्र (agroecosystem) के

क्रमिक पुनः मॉडलिंग की आवश्यकता होती है, जिससे विभिन्न विकल्पों का परीक्षण करके पारिस्थितिक और आर्थिक प्रदर्शन में सुधार की जाये ठीक उसी प्रकार जैसे जैविक कृषि में होता है। वे कृषि पद्धतियों जो परिरूप पारिस्थितिक प्रथाओं के अनुकूल हैं, जैसे शून्य-जुताई और पॉलीकल्चर अक्सर बहुत महत्वपूर्ण होते हैं, न केवल उन परिस्थितियों के लिए जहाँ मशीनीकरण की आवश्यकता होती है, बल्कि उन कृषि हालात के लिए भी जिनमें हस्त श्रम और पशु कर्षण प्रचलन में हैं।

पुराने यथार्थ में संशोधन की जरूरत

पारंपरिक कृषि के संकीर्ण वैज्ञानिक तर्क की स्वीकृति, इस तर्क को चुनौती देने वाले विकल्पों को लागू करने की वास्तविक संभावना को प्रतिबंधित करती है। कुछ विरोधाभासी प्रथाएं हैं:

- गहन बीजयुक्त तैयारी बनाम शून्य जुताई
- शाकनाशियों का उपयोग बनाम मल्च और कवर फसलों का उपयोग
- निरंतर सिंचाई बनाम वातित मिट्टी की स्थिति में धान का उत्पादन
- पद्धतियाँ जो अनाज में दौजी (tillering) को रोकते हैं बनाम वे पद्धतियाँ जो दौजी को उत्तेजित करते हैं, जैसे धान में
- अनाज में उच्च घनत्व पंक्ति रोपण बनाम कम घनत्व रोपण, जैसे धान में
- मिट्टी को निषेचित करने और कीटों और खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए एग्रोकेमिकल्स का उपयोग बनाम आवरण फसलों का उपयोग, चारा फसल, और कार्यात्मक जैव विविधता

समय ऐसी पुरानी सच्चाइयों को संशोधित करने के लिए परिपक्व है, क्योंकि प्राप्य विकल्प संसाधन संरक्षण कर रहे हैं और प्रतिस्पर्धी तरीके से उत्पादन बढ़ाने की क्षमता रखते हैं। फिर भी, संधारणीय कृषि के बारे में बहुत कुछ जानना बाकी है, इसलिए और भी शोध आवश्यक है और अत्यंत महत्वपूर्ण है। अनुभव बताते हैं कि संसाधन संरक्षण और कृषि-पारिस्थितिकी के आधार पर कृषि में काफी संभावनाएं हैं। इस क्षमता को उजागर करने से आनुवंशिक रूप से संशोधित किस्मों को समाविष्ट करने की आवश्यकता कम हो जाती है। यह संभावित जोखिमों का विश्लेषण और चर्चा करने के लिए समय देता है। यह आनुवंशिक संशोधन के कारण होने वाली संभावित आपदा को रोक सकता है।

जैव-विविधता आधारित कृषि की ओर

सिर्फ वैकल्पिक कृषि परिरूपों की शुरूआत करने से अंतर्निहित ताकतों को बदलने में बहुत कम मदद मिलेगी जो वर्तमान में यह उच्च-इनपुट मोनोकल्चर की ओर ले जाता है, और दीर्घकालिक स्थिति में सुधार नहीं करेगा। पारिस्थितिक क्षरण न केवल एक पारिस्थितिक प्रक्रिया है, बल्कि एक राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक प्रक्रिया भी है। कई राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय नीति परिवर्तन, जैसे मूल्य निर्धारण और प्रोत्साहन, अनुसंधान और विस्तार, कृषि व्यापार और शिक्षा के बारे में स्थायी कृषि के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बनाने के लिए आवश्यक हैं। मोनोकल्चर रूपांतरण के लिए बड़े पैमाने पर और सभी हितधारकों की गहन भागीदारी की आवश्यकता है। सहभागी शिक्षण, अनुसंधान और विस्तार कार्यक्रम, जो किसानों के बड़े और विविध समूहों तक पहुँच सकते हैं और जुटा सकते हैं, की आवश्यकता है। किसान शिक्षा और प्रयोग के माध्यम से सहायता करना, उदाहरण के लिए, फार्म योजना, संधारणीयता विश्लेषण, भागीदारी अनुसंधान और किसान-से-किसान दृष्टिकोण और जन संचार और सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग बदलाव बनाने के लिए बड़े पैमाने पर, लागत प्रभावी रणनीति के महत्वपूर्ण तत्व हो सकते हैं।

एक जन आंदोलन की जरूरत!

हालांकि, यह उन किसानों और उपभोक्ताओं के एक बड़े पैमाने पर आंदोलन के बिना नहीं हो सकता है, जो उच्च इनपुट मोनोकल्चर की मृत-अंत सड़क के बारे में आश्वस्त हैं। विकास कार्यकर्ताओं, शोधकर्ताओं, नीति निर्माताओं और फंडर्स के व्यापक गठबंधन, जो इस तरह के आंदोलन का समर्थन करते हैं और प्रचलित आर्थिक और पारंपरिक वैज्ञानिक ताकतों के खिलाफ एक महत्वपूर्ण ताकत की जरूरत है।

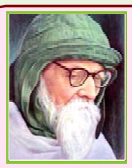

मैं दुनिया के सभी भाषाओं की इज्जत करता हूँ, पर मेरे देश में हिंदी की इज्जत न हो, ये मैं सह नहीं सकता।

आचार्य विनोबा भावे

फल उद्यानिकी में नैनोटेक्नोलॉजी की भूमिका

संजय कुमार सिंह, सुशील कुमार पूर्बे, विनोद कुमार, स्वाति शर्मा एवं जय प्रकाश वर्मा

वैज्ञानिक (उद्यान)

भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर (बिहार)

संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के अनुसार 2025 तक दुनिया की जनसंख्या 800 करोड़ तक पहुंच जाएगी। विश्व आबादी का 17.84% हिस्सा भारत का है। 2025 तक भारत की कुल आबादी 1.5 अरब से अधिक होने की संभावना जताई जा रही है। ऐसे में आबादी बढ़ने के साथ-साथ अनाज उत्पादन जो अभी 25.2 करोड़ टन (2015-16) है, इसकी मांग 30 करोड़ टन तक पहुंच जाएगी। ऐसे में बढ़ती आबादी को भरपूर अनाज मिले और उत्पादकता बढ़े, इसके लिए नैनोबायोटेक्नोलॉजी कृषि क्षेत्र में नई क्रांति ला सकती है। संयुक्त राष्ट्र शिखर सम्मेलन, सतत विकास 2002, में ये बात सामने आई कि नैनोटेक्नोलॉजी जब एक उपकरण के रूप में लागू किया जाता है तो ये पानी, उर्जा, स्वास्थ्य, पर्यावरण, कृषि, जैव विविधता और पारिस्थितिक तंत्र प्रबंधन के क्षेत्र में दुनिया के लिए सबसे महत्वपूर्ण और टिकाऊ साबित हो सकता है। खेती को लाभदायक बनाने के लिए दो ही उपाय है। उत्पादन को बढ़ाए व लागत खर्च को कम करें।

21वीं सदी नैनो सदी बनने जा रही है। आज वस्तुओं के आकार को छोटा और मजबूत बनाने की होड़-सी मची हुई है। विभिन्न क्षेत्रों में नैनो तकनीक विकसित करने के लिए दुनिया भर में बड़े पैमाने पर शोध हो रहे हैं। अति सूक्ष्म आकार, बेजोड़ मजबूती और टिकाऊपन के कारण इलेक्ट्रॉनिक्स, मेडिसिन, ऑटो, बायोसाइंस, पेट्रोलियम, फॉरेंसिक और डिफेंस जैसे तमाम क्षेत्रों में नैनो टेक्नोलॉजी की असीम संभावनाएं बन रही हैं। अमेरिका, जापान और चीन के बाद भारत इस क्षेत्र में शोध पर सबसे अधिक निवेश करने वाला देश है। फिलहाल 400 से अधिक कंपनियां इस प्रौद्योगिकी पर आधारित 1000 से अधिक वस्तुएं बाजार में उतार चुकी हैं। भारत की तीस से अधिक कंपनियां सैकड़ों करोड़ के नैनो उत्पादों को अमेरिका, जर्मनी और पोलैंड जैसे देशों को निर्यात कर रही हैं। विकासशील देशों में नैनो प्रौद्योगिकी ऊर्जा, पर्यावरण, स्वास्थ्य एवं कृषि से संबंधित अन्य क्षेत्रों में क्रांतिकारी तकनीक के रूप में उभर रही है। नैनो प्रौद्योगिकी किसी तकनीक को नैनो पैमाने पर दर्शाती है जिसका विभिन्न क्षेत्रों में अलग-2 महत्व होता है। जब किसी पदार्थ का आकार 1-100 नैनोमीटर के बीच में होता है तो उसे नैनो कणों के रूप में जाना जाता है। किसी भी पदार्थ के गुण नैनो पैमाने पर उसके असली स्वरूप से बिल्कुल भिन्न होते है, इन्हीं गुणों के कारण, नैनो कणों ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नए रास्ते खोल दिए हैं।

नैनो तकनीक क्या है?

नैनो का अर्थ है ऐसे पदार्थ, जो अति सूक्ष्म आकार वाले तत्वों (मीटर के अरबवें हिस्से) से बने होते हैं। नैनो टेक्नोलॉजी अणुओं व परमाणुओं की इंजीनियरिंग है, जो भौतिकी, रसायन, बायो इन्फॉर्मेटिक्स व बायो टेक्नोलॉजी जैसे विषयों को आपस में जोड़ती है।

इस प्रौद्योगिकी से विनिर्माण, बायो साइंस, मेडिकल साइंस, इलेक्ट्रॉनिक्स व रक्षा क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव लाया जा सकता है, क्योंकि इससे किसी वस्तु को एक हजार गुणा तक मजबूत, हल्का और भरोसेमंद बनाया जा सकता है। छोटे आकार, बेहतर क्षमता और टिकाऊपन के कारण मेडिकल और बायो इंजीनियरिंग में नेनौ टेक्नोलॉजी तेजी से बढ़ रही है। नेनौ टेक्नोलॉजी से इंजन में कम घर्षण होता है, जिससे मशीनों का जीवन बढ़ जाता है। साथ ही ईंधन की खपत भी कम होती है। नैनो विज्ञान अति सूक्ष्म मशीनें बनाने का विज्ञान है। ऐसी मशीनें, जो इंसान के जिस्म में उतर कर, उसकी धमनियों में चल-फिर कर वहीं रोग का ऑपरेशन कर सकें। ऐसी मशीनें, जो मोबाइल को आपके नाखून से भी छोटा कर दें। जो ऐसी धातु बना दें, जो स्टील से दस गुना हल्की और सौ गुना मजबूत हो। यानी वह धातु, जिससे ऐसे खंभे बनाए जा सकें, जो सिर्फ कुछ इंच के हों, लेकिन पुल का बोझ सह सकें।

नैनो तकनीक का कृषि में भविष्य

तकनीकी जानकारों का मानना है कि आने वाला समय नैनो टेक्नोलॉजी का होगा। इससे ऐसी सूक्ष्म दवा बनाई जा सकेगी, जो कैंसर की करोड़ों कोशिकाओं में से किसी एक को पहचान

कर उसका अलग से इलाज कर सकेगी। नैनो तकनीक में किसी भी पदार्थ की मॉलीक्यूलर असेंबलिंग को समझ कर उसके आकार को आपके बाल के आकार जितना छोटा बनाया जा सकता है और इसकी प्रोसेसिंग क्षमता भी आज की तुलना में कई गुना बेहतर होगी। नैनो टेक्नोलॉजी की मदद से ऐसे छोटे हथियार बनाए जा सकते हैं, जो चमत्कारिक परिमाण दे सकते हैं। मसलन ऐसे धागे, जिनसे केमिकल या जैवीय हमलों को झेलने में सक्षम कपड़े बुने जा सकेंगे।

विकासशील देशों में नैनोबायो-टेक्नोलॉजी के संभावित अनुप्रयोगों पर संयुक्त राष्ट्र सर्वेक्षण के अनुसार नैनो बायोटेक्नोलॉजी में उपर्युक्त अंतराल में नियंत्रण करने की क्षमता तो है कि साथ ही पौधों को रोगों से बचाने, तेजी से बीमारी का निदान करना, उत्पादकता बढ़ाने साथ ही पौधों तक पोषक तत्व पहुंचाने की क्षमता है। परिशुद्धता वाले खेती के तरीके भी नैनोटेक्नोलॉजी से बहुत प्रभावित होंगे और कृषि अपशिष्ट और पर्यावरण प्रदूषण को कम करने में भी मदद मिलेगी। नैनोबायोटेक्नोलॉजी के प्रयोग से हम उत्पादकता में वृद्धि, उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार, फसल हानियों को कम करने और प्राकृतिक संसाधन का बेहतर प्रबंधन कर सकते हैं। नैनो के क्षेत्र में प्रगति के अवसर बहुत ज्यादा हैं। इसकी मदद से कम आय वाले किसानों की आजीविका में सुधार हो सकती है। नैनो बायोटेक्नोलॉजी न केवल वैज्ञानिक और तकनीकी अर्थों में क्रांतिकारी है बल्कि सामाजिक और आर्थिक परिदृश्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

एक तो भारतीय कृषि अनुसंधान केंद्रों में अब न सिर्फ ज्यादा उत्पादन वाली किस्में विकसित की जा रही हैं बल्कि बायोटेक्नोलॉजी और नैनोटेक्नोलॉजी जैसी अत्याधुनिक तकनीकों के इस्तेमाल से नए उत्पाद और प्रक्रियाएं भी विकसित की जा रही हैं। दूसरी, कृषि-औद्योगिक अब ऐसी उत्कृष्ट तकनीकों का वाणिज्यिक स्तर पर इस्तेमाल करने के लिए तैयार हैं जैसे कपास के रोए (ओटाई के बाद कपास के बीज से चिपके रहने वाले पतले और रेशमी धागे) से 'नैनो सेल्युलोज और लागत बचाने व बेहतर उत्पादन सुनिश्चित करने की खातिर पौधों तक पोषक तत्त्वों को पहुंचाने में मदद करने वाले' नैनो उर्वरक जैसी तकनीक इसी बात की पुष्टि करते हैं। हाल के वर्षों में सतत कृषि की अवधारणा भी विकसित हुई है, जिसके अंतर्गत प्राकृतिक संसाधनों के कुशल और सतत उपयोग द्वारा कृषि प्रक्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं। उर्वरकों और कीटनाशकों के संदर्भ में नैनो टेक्नोलॉजी का उपयोग नई सम्भावनाएँ उत्पन्न कर रहा है। इसी प्रकार यंत्रीकरण और कृषि में ऊर्जा के उपयोग के क्षेत्र में भी नवोन्मेषों द्वारा कृषि उत्पादन को अधिक कुशल और सक्षम बनाने की अनेक सम्भावनाएँ मौजूद हैं।

कृषि क्षेत्र में नैनो बायोटेक्नोलॉजी का प्रयोग अभी भी अपनी प्रारंभिक अवस्था में हैं, और मुख्य रूप से कृषि और पर्यावरणीय चुनौतियों जैसे कि स्थिरता, बेहतर पौधे की किस्मों, उत्पादकता में वृद्धि, और प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन के समाधान प्रदान करने पर केंद्रित है। पौधों के प्रजनन और आनुवंशिक परिवर्तन के क्षेत्र में जानकारी जुटाने के लिए भी नैनो तकनीक का सहारा लिया जा रहा है।

फसल उत्पादन मे नैनो तकनीक का उपयोग

नैनो टेक्नोलॉजी पेड़ और प्राणी संबंधी जीनोम के अध्ययन में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है, जिससे डीएनए को क्रमवार करने में अभी के मुकाबले काफी कम समय लगेगा और यह प्रक्रिया काफी आसान हो जाए। कार्बन नैनो ट्यूब की मदद से बीज की अंकुरण बढ़ाया जा सकता है। नैनो प्रौद्योगिकी की मदद से उर्वरकों में सूक्ष्म पोषक तत्वों को मुख्य पोषक तत्वों के साथ मिलाकर जिससे पौधों को मुख्य पोषक तत्व व सूक्ष्म पोषक तत्व का निश्चित अनुपात मिल सके। मिश्रण तैयार किया जाता है। इस तकनीक की मदद से पादपों में उपस्थित विषाक्त पदार्थों की पहचान करने भी किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर नैनो-सेंसर्स और नैनो बुद्धिमत्तापूर्ण वितरण प्रणाली (नैनो स्मार्ट डिलिवरी सिस्टम) के माध्यम से पौधों को पानी और खाद का उचित पोषण मिल सकेगा। प्रोसेस्ड फूड और अन्य खास कृषि उत्पादों के मामले में नैनो तकनीक का इस्तेमाल हो सकता है, जिसके माध्यम से उत्पादों की पहचान और क्वॉलिटी बरकरार रखने में मदद मिलेगी।

मृदा सुधार में उपयोग

इस तकनीक से पौधों में संतुलित मात्रा में पोषक तत्वों की आपूर्ति करने में महत्वपूर्ण मानी जाती है। इससे खेत में कम मात्रा में खाद की आवश्यकता होगी तथा अधिकतम उत्पादन होगा। मृदा सुधार के लिए पारंपरिक संसाधनों का प्रयोग करने की बजाय नैनो सामग्री का प्रयोग अधिक लाभकारी है, छोटा आकार तथा अत्यधिक विशिष्ट सतह क्षेत्र होने

के कारण नैनो कणों का मृदा में वितरण काफी सरल है जिसके फलस्वरूप इनकी रासायनिक प्रतिक्रिया दर बढ़ जाती है। जो मृदा सुधार के लिए उच्च क्षमता तथा उच्च दर को दर्शाता है। छोटा आकार स्थानिक (इनसीटू) प्रयोग में आसान तथा वितरण के लिए फायदेमंद है। मृदा सुधार के लिए अच्छी क्षमता वाले कुछ नैनो कण जैसे जियोलाइट्स, सल्फाइड इत्यादि का प्रयोग शामिल है। इनका उपयोग एवं विस्तारपूर्वक विश्लेषण निम्नानुसार है:

1. जियोलाइट्स व नैनो उर्वरक: जियोलाइट्स को दूषित मृदा के लिए मृदा कंडीशनर, उर्वरक और सुधारक के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। सूखे की समस्या को सुधारने के लिए जियोलाइट्स मिट्टी में एक बाती (केपिलरी) सामग्री के रूप में कार्य करता है और उथले भूजल को पौधे की जड़ क्षेत्र तक पहुँचाता है तथा पौधों की वर्षा या सिंचाई पर निर्भरता को कम करने में सहायता करता है। जियोलाइट्स वर्धित उर्वरकों के अलावा कुछ ऐसे और भी नैनो कणों को खोजा गया है जो उर्वरक के रूप में उपयोगी है। जियोलाइट्स को कृषि के क्षेत्र में नाईट्रोजन उर्वरकों के निक्षालन से होने वाले नुकसान एवं पौधों में अमोनिया विषाक्तता को कम करने तथा कृषि पैदावार बढ़ाने के लिए प्रभावी ढंग से प्रयोग किया जा सकता है। जबकि अम्लीय मृदा पर जियोलाइट के 10 प्रतिशत प्रयोग का वर्षा के सतही प्रवाह तथा मृदा अपरदन से होने वाले नुकसान का परीक्षणों में मृदा स्थिरता तथा भौतिक दशा में सुधार पाया गया है।
2. शून्य वैलेंट आयरन: यह स्थिर जैविक प्रदूषक को नष्ट करके सौम्य यौगिकों में परिवर्तित करने में सक्षम है। आयरन ऑक्साइड के नैनो कण मृदा में प्रायः नैनो क्रिस्टल के रूप में पाया जाता है जिसका व्यास (5-100 नैनो मी.) है। विषाक्त पदार्थों के प्रति प्रमुख अवशोषण क्षमता और पर्यावरण के प्रति अनुकूल विशेषताओं के कारण, आयरन ऑक्साइड नैनो कणों के कई रूपों का निर्माण किया गया है तथा मिट्टी और पानी के सुधार के लिए स्थानिक अनुप्रयोगों में सफलतापूर्वक उपयोग किया गया है।
3. फॉस्फेट आधारित नैनो कण का एक विशिष्ट उदाहरण लैंड (पारा) से विषाक्त मृदा सुधार का है। एक शोध कार्य के परिणामों में दर्शाया गया है कि नैनो कणों के प्रयोग द्वारा तीन प्रकार की मृदा (कैल्शियम युक्त, उदासीन और अम्लीय) में सीसा के निक्षालन और पादप उपलब्धता में प्रभावी रूप से कमी होती है ।
4. आयरन सल्फाइड नैनो कण का प्रयोग, जलभराव की स्थिति वाली एवं भारी धातुओं से विषाक्त मृदा में रेडुसड सल्फर ऑक्साइड का प्रयोग किया जाता है जिसमें रेडुसड सल्फर स्थिरीकरण या सिंक के रूप में कार्य करता है तथा मृदा में विद्यमान धातु के साथ रासायनिक अभिक्रिया द्वारा अत्यधिक अघुलनशील धातु के सल्फाइड बनाकर मृदा सुधार करता है।

बेहतर फसल सुरक्षा हेतु नैनो तकनीक

नैनो बायोटेक्नोलॉजी में उपर्युक्त अंतराल में नियंत्रण करने की क्षमता तो है कि साथ ही पौधों को रोगों से बचाने, तेजी से बीमारी का निदान करना, उत्पादकता बढ़ाने साथ ही पौधों तक पोषक तत्व पहुंचाने की क्षमता है। कई कीटनाशक निर्माता नैनोकणों को विकसित कर रहे हैं जो एक समय पर ही प्रभावी होगा या किसी पर्यावरणीय ट्रिगर की घटना होने पर। नैनो कौपर की मदद से बक्टेरियल झुलसा, लीफ स्पॉट को नियंत्रित कर सकते है। कराटे/Zeon जो की सूक्ष्म संपुटित उत्पाद है जिसमें लेम्ब्डा-साईहलोथ्रीन है पौध की पत्ती के संपर्क में आने के बाद ही प्रभावी होता है। भारत में नैनो सल्फर उत्पादन के लिए तकनीक विकसित की गई। नैनो आकार गन्धक कणों की फँफूदीनाशक व पीड़कनाशक गुणों की क्षमता को बढ़ाते हैं। विकसित उत्पाद बाजार में उपलब्ध फॉर्मूलेशन की अपेक्षा दो गुणा अधिक प्रभावी है, इसलिए कम मात्रा में बेहतर प्रभाव दिखाती है। नैनो सल्फर पादप फँफूदी क्लेस्टोथिसिया को भेद कर उसे प्रभावहीन (नपुन्सक) बनाती है। नैनो हैक्सोकोनाजोल बनाने की तकनीक भी भारत में विकसित की गई है। यह उत्पाद राइजोक्टोनिया सोलानी, (धान में शीथ ब्लाइट नामक बीमारी का कारक), पर बाजार में उपलब्ध फॉर्मूलेशन की अपेक्षा 2-6 गुणा अधिक प्रभावी है। सरसों के अंकुरण एवं स्थापन पर भी इस का कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पाया गया। कुछ अन्य महत्वपूर्ण कार्य जो नैनो

तकनीक कर सकत वे ये है:

- नैनो संरचना उत्प्रेरक कीटनाशक एवं खरपतवार नाशक की कार्य क्षमता तो बढ़ाता ही है साथ-साथ कम दर पर ज्यादा नियंत्रण में सक्षम है।
- यह भी देखा गया है की अल्फा-अल्फा पौध को अगर स्वर्ण धनी मिट्टी में उगाने पर स्वर्ण के नैनो कण जड़ो द्वारा अवशोसित करते है तथा पौथ में संग्रहीत करते है। तत्पश्चात कटाई उपरांत इसे यांत्रिक विधि से स्वर्ण नैनो-अणु को निकाल सकते है।
- नैनो इमल्शन का प्रयोग बीमारी व कीट के प्रकोप से बचाता है। खासकर वैसे कीटनाशक जो पानी में नहीं घुलते है उसे घुला देता है। पायरथ्रोइड जो की लेम्डा-सायलोथ्रिन एवं सायपर-मेथरिन के रूप में होता है उसका वसा नैनो इमलसन भी बना दिया गया है जो की वायुमंडल के लिए ज्यादा अच्छा है।
- भविष्य में खरपतवारनाशी के लिए रासायनिक छिड़काव के बजाय नैनो हर्बीसाइड्स अति सूक्ष्म मात्रा में प्रयोग किए जाएँगे। इसके जरिए कीड़ों के नियन्त्रण में कम से कम रसायन का प्रयोग होगा और फसल उत्पादन प्राप्त किया जा सकेगा। अलग आणविक वजन का चिटोसन (Chitosans) का प्रयोग बेसिलस सीनेरिया के विकास को बाधित करने में होता है। चिटोसन की प्रतिरोध क्षमता के कारण टमाटर में ग्रे मोल्ड नहीं लगता है।

कटाई उपरांत प्रबंधन में नैनो टेक्नोलोजी

वर्तमान में, अधिकांश नैनो टेक्नोलोजी का उपयोग कृषि आपूर्ति श्रृंखला, पैकेजिंग सामग्री में सुधार के लिए होता है। इस तकनीक द्वारा खाद्य पदार्थों में पोषक तत्व की मात्रा बढ़ाइ जा सकती है, फल व सब्जियों को अधिक समय तक सुरक्षित किया जा सकता है। नैनोटेक्नोलॉजी सूक्ष्म जीवों का विकास को नियंत्रित करता है। नई पीढ़ी की पैकेजिंग कवरेज (फिल्म्स) अधिक ताकतवर, गुणवत्ता से परिपूर्ण बनाए जा सकते है। भंडारण के स्वचालित नियंत्रण के लिए कई चिप्स का उपयोग (Nanobiosensors) कर सकते है जो भंडारण में मौलिक कार्य है। नैनोलामिनेट के कई महत्वपूर्ण खाद्य-उद्योग में अनुप्रयोग हैं। खाद्य सुरक्षा हेतु नैनो संरचित सामग्री बैक्टीरिया और सूक्ष्म जीवों के आक्रमण को रोक देगा तथा एम्बेडेड नैनो-सेंसर पैकेजिंग उपभोक्ता को चेतावनी देगा कि भोजन खराब हो गया है। कई फलों और सब्जियों में नैनो का उपयोग एंटिफंगल के लिए किया जा रहा है। वर्तमान में, नैनो जिंक ऑक्साइड, नैनो-सिलिकॉन और नैनो-कैल्सियम कार्बोनट का प्रयोग फल व सब्जियों को सरक्षित करने में करते है। नैनो पैकिंग के साथ हरी चाय में विटामिन सी, क्लोरोफिल, पॉलिफेनोल, एमिनोसिड का बेहतर रखरखाव होता है वनिस्पत सामान्य पैकिंग में।

अतः नैनो तकनीक सिर्फ उत्पादन नहीं बल्कि नैनो खाद के उपयोग द्वारा अनाज के पोषक तत्वों की भी वृद्धि करती है। नैनो पदार्थों के उत्पादन, उसके गुणों का अध्ययन एवं उसके उपयोग कर बेरोजगारी की समस्या को हल करने में प्रभावी होगा।

''फूल को देखो, कितना उदारता से यह इत्र और शहद वितरित करता है। जब यह काम पूरा हो जाता है, तो यह चुपचाप गिर जाता है। फूल की तरह बनने की कोशिश करो।''

डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम

जीनोमिक लहर की नई सवारी: ''जैव प्रौद्योगिकी पारंपरिक प्रजनन की जगह नहीं लेगी''

अभय कुमार[1], प्रतिभा सिंह[2], सुजीत कुमार बिशी[3], चन्दन कुमार गुप्ता[4] एवं मनेश चंद्र डागला[5]

[1]भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर (बिहार)
[2]महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, पूर्वी चंपारण, मोतिहारी (बिहार)
[3]भाकृअनुप-भारतीय कृषि जैवप्रौद्योगिकी संस्थान, राँची (झारखंड)
[4]भाकृअनुप-भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)
[5]भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब)

जीव विज्ञान के इतिहास में एक निर्णायक क्षण ग्रेगर मेंडल द्वारा आनुवांशिकी के नियमों का व्याख्या था, जिनका काम वर्ष 1900 में फिर से खोजा गया और यह व्यापक रूप से जाना जाने लगा। इसी श्रेणी के रैंकिंग में एक सदी बाद पूर्ण पादप जीनोम अनुक्रम की घोषणा को रखा जाना चाहिए, विशेष रूप से मनुष्यों और पादप अराबिडोप्सिस थालीआना (2001) और धान (2005) की। इन शुरूआती पादप जीनोम ने फसल शोधकर्ताओं को लाभान्वित किया और जैवप्रोद्योगिकी के कई पहलुओं को समझने में सक्षम बनाया। पिछले दो दशकों में 300 से अधिक पौधों की प्रजातियों का अनुक्रम किया गया है।

एक जीनोम डेटाबेस सभी सूचनाओं को संग्रहीत और प्रस्तुत करने के लिए डिजाइन किया जाता है। जैव सूचना विज्ञान के तेजी से विकास के साथ, जीनोम डेटाबेस केवल डेटा भंडारण मंच से एक नया अध्ययन का विषय-जैव सूचना विज्ञान (Bioinformatics) तक विकसित हुआ है। सन् 2001 से, विभिन्न आवृत बीजी प्रजातियों जीनोम डेटाबेस को पादप जीनोम की अनुक्रमण परियोजनाओं की प्रगति के साथ समनुरूप विकास किया गया है। सबसे शुरूआती आवृत बीजी प्रजाति जीनोम डेटाबेस, जीनोम अनुक्रमण डेटा के भंडार के रूप में डिजाइन किया गया था, ये डेटाबेस तब जीनोम पोर्टल/हब के रूप में सेवा करने के लिए विकसित हुए हैं जो विभिन्न जीनोमिक जानकारी को एकीकृत करते हैं, साथ ही ऑनलाइन जीनोमिक्स विश्लेषण प्रदान करने वाले वेब सर्वर के रूप में भी उभर कर आई है।

20वीं सदी के अधिकांश फसल आनुवांशिकीविदों ने प्रतिरोध जीनों की पहचान करना और उनका मानचित्र बनाने के लिए गहन श्रम किया। 1990 के दशक में आणविक मार्करों के आगमन के साथ काम काफी तेज हो गया। हालांकि, इन श्रमसाध्य प्रयासों के परिणामस्वरूप संभवतः कुछ सौ प्रमुख जीन और लगभग उतनी ही मात्रात्मक लक्षणों को नियंत्रित करने वाले आनुवांशिक स्थल की एक मानचित्र अवस्थिति के रूप में सामने आया, जिनमें से केवल कुछ मुट्ठी भर ही डीएनए स्तर पर प्रतिस्थापित किया जा सका। अचानक, अब हमारे पास विभिन्न प्रजातियों के अनुमानित लाखों वंशाणुओं के विस्तृत अनुक्रम हैं, जो पौधे के विकास को नियंत्रित करते हैं।

आणविक जीव विज्ञान में इस आश्चर्यजनक प्रगति के समानांतर, हमारी नयी तकनीक जिससे सीधे वंशाणुओं के रूप में डीएनए को पौधों में समाविष्ट करने की क्षमता में समान प्रगति है। ट्रांसजेनिक फसलों का रोपण क्षेत्र 1995 में सिफर से बढ़कर 2018 में 19.17 करोड़ हेक्टेयर से अधिक हो गया है। ट्रांसजेनिक फसलों की खेती कई देशों में अब होती है; और ट्रांसजेनिक फसल कुछ वर्षों के भीतर और भी व्यापक होने की उम्मीद करनी चाहिए।

एक सवाल ये रूझान अक्सर उठाता है, 'पारंपरिक पौधों के प्रजनन का भविष्य क्या है?' सबसे पहले, हमें बताना चाहिए कि 'पारंपरिक पादप प्रजनन' एक मिथ्या संज्ञा है। पादप प्रजनकों ने लगातार अपने दृष्टिकोण का मूल्यांकन किया है और उनके प्रजनन प्रयासों को और अधिक कुशल बनाने के लिए साधन की एक विस्तृत श्रृंखला को अपनाया है। चर्चा के लिए, हम पारंपरिक पादप प्रजनन को ट्रांसजेन सम्मिलित किए बिना संकरण तथा क्षेत्र चयन के रूप में परिभाषित करेंगे। यह सच है कि जैव प्रौद्योगिकी क्रांति के शुरूआती दिनों में किसी ने इस तरह की टिप्पणियों को सुना हो, 'भविष्य में, हम प्रयोगशाला में

नए पौधों की किस्मों का उत्पादन करेंगे, जिसमें कृषि भूमि के काम की कोई आवश्यकता नहीं है।' हालाँकि, नए जीवविज्ञान के कट्टर हिमायती भी अब इस भ्रामक विचार पर विवाद करेंगे। अनुप्रयुक्त आनुवांशिक अभियांत्रिकी का एक मूल तथ्य यह है कि सभी ट्रांसजेनिक हेरफेर में पारंपरिक रूप से प्रजाति की किस्में ही शामिल हैं। एक ट्रांसजेनिक पौधा एक पारंपरिक रूप से उभरे हुए प्रजाति से ज्यादा कुछ नहीं है जिसमें एक नया जीन डाला गया है। हलाकि डाला गया जीन एक बहुत महत्वपूर्ण विशेषता जोड़ सकता है, फिर भी यह सम्पूर्ण आनुवंशिक ढांचा का एक बहुत छोटा सा हिस्सा बनता है जो पौधे की संपूर्ण विशेषताओं को निर्धारित करता है।

हम उम्मीद करते हैं कि फसलों के पूर्ण जीनोम अनुक्रम से नई बेहतर किस्मों के प्रजनन की हमारी क्षमता में काफी सुधार होगा। हमारा परम लक्ष्य प्रत्येक जीन के कार्य की पहचान करना और बाद में उन जीनों के सबसे अनुकूल एलील्स (संस्करण) हैं, जिन्हें हम बाद में अग्रणी किस्मों में समाविष्ट कर सकते हैं। भविष्य में, यह तकनीक हमें अपने पादप प्रजनन आबादी में सभी जीनों का पता लगाने का सामर्थ्य देगा। जैसे जैसे यह सस्ता और अधिक व्यापक रूप से उपलब्ध हो जाता है, यह हमें व्यापक क्षेत्र परीक्षणों के बिना प्रजनन आबादी से सर्वश्रेष्ठ पौधों का चयन करने की क्षमता देनी चाहिए। आणविक स्तर पर एलील के विशिष्ट संयोजनों के लिए ब्रीडर्स सीधे कुलीन प्रजनन लाइनों का उत्पादन करने में सक्षम होंगे। हालाँकि, इन कुलीन लाइनों को अभी भी पादप प्रजनक, अन्य कृषि वैज्ञानिकों और अंत में, किसानों द्वारा गहन मूल्यांकन की आवश्यकता होगी।

फसल प्रजनकों के लिए चुनौतियां बहुत बड़ी हैं। हमें एक लंबा रास्ता तय करना है विशेष रूप से सूखे के लिए अजैविक तनाव सहिष्णुता की समस्या को हल करने में। भविष्य में, अनाज उपभोक्ता ऐसी किस्में चाहेंगे जो न केवल स्वादिष्ट हों, बल्कि अधिक पौष्टिक भी हों। इसके अलावा एक और महत्वपूर्ण भूमिका में उभर के आने वाली पर्यावरण संबंधी चिंताएँ भी होंगी जैसे टिकाऊ कीट प्रतिरोध, अधिक कुशल पोषक तत्व के रूप में, और वैश्विक जलवायु परिवर्तन और प्रदूषण के प्रति किसानों की प्रतिक्रिया। आनुवंशिक इंजीनियरिंग और जीनोमिक साधन इन पादप प्रजनन प्रयासों के पूरक होंगे। यद्यपि हम 1960 के दशक की हरित क्रांति के उपज लाभ के साथ एक सममूल्य पर सफलताओं का अनुमान नहीं लगा सकते हैं, हम निश्चित रूप से कई मोर्चों पर वृद्धिशील प्रगति की उम्मीद कर सकते हैं।

संभव है कि कोई यह तर्क दे सकता है कि भविष्य में हम पूरी तरह से प्रयोगशाला में इष्टतम जीनोटाइप बनाने में सक्षम होंगे। यह एक चित्ताकर्षक संभावना है, लेकिन हम पौधों के प्रजनन के शास्त्रीय तरीकों में निपुण वैज्ञानिकों की कई और पीढ़ियों की बढ़ती मांग को देखने की उम्मीद करते हैं। इन प्रजनकों के पास अपने काम को सुविधाजनक और सटीक बनाने के लिए कई नए साधन होंगे, लेकिन उन्हें अपना आधार नहीं छोड़ना चाहिए- कि संकरण के लिए क्रॉस कैसे बनाई जाए और फील्ड नर्सरी कैसे बनाई जाए।

आप जैसे विचार करेंगे, वैसे ही बन जायेंगे। अगर आप अपने को कमजोर मानेंगे तो आप कमजोर बन जायेंगे और यदि आप आपने को ताकतवर मानेंगे तो ताकतवर बन जायेंगे।

स्वामी विवेकानन्द

कृषि क्षेत्र में महिलाओं की पहचान

वंदना कुमारी[1] एवं प्रज्ञा कुमारी[2]

[1]सहायक प्राध्यापक, गृह विज्ञान परास्नातक विभाग, महंत दर्शन दास महाविद्यालय, मिठनपुरा, मुजफ्फरपुर 842, 002, बिहार

[2]शासकीय होलकर (आदर्श, स्वशासी) विज्ञान महाविद्यालय, इंदौर

आज देश की कुल आबादी में आधा हिस्सा महिलाओं का है, इसके बावजूद वे अपने मूलभूत अधिकारों से भी वंचित हैं खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में। अधिकारों के अतिरिक्त देखा जाये तो जिन क्षेत्रों में वे पुरुषों के मुकाबले बराबरी पर भी हैं, वहाँ उनकी गिनती पुरुषों की अपेक्षा कमतर ही आँकी जा रही है। इसी में से एक क्षेत्र है कृषि। इसमें भी महिलाओं को अधिकतर मजदूर का दर्जा ही प्राप्त है, कृषक का नहीं। बाजार की परिभाषा में अनुकूल कृषक होने की पहचान इस बात से तय होती है कि जमीन का मालिकाना हक किसके पास है, इस बात से नहीं कि उसमें श्रम किसका और कितना लग रहा है और इसे विडम्बना ही कहा जाएगा कि भारत में महिलाओं को भूमि का मालिकाना हक ना के बराबर है। इन सबके अतिरिक्त अगर महिला कृषकों के प्रोत्साहन की बात की जाये तो देश में केन्द्र और राज्य सरकार द्वारा कृषि क्षेत्र को बढ़ावा देने हेतु अनेक प्रकार की योजनाएँ, नीतियाँ व कार्यक्रम हैं परन्तु उन सबकी पहुँच महिलाओं तक या तो कम है या बिल्कुल नहीं है। यही कारण है कि देश की आधी आबादी देश के सबसे बड़े कृषि क्षेत्र में हाशिए पर है। ग्रामीण परिवर्तन की मौजूदा स्थिति के कारण ही कृषि क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका उजागर हो पाई है। सामान्यतः, इस विषय पर चर्चा बहुत ही स्वभाविक प्रवृत्तियों पर ही केंद्रित रहती है; जैसे, स्व-नियोजित रूप में कृषि-क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं का अनुपात, सहायता-राशि का भुगतान न होना या श्रमिकों को मजदूरी न मिलना। जो मुद्दा उपेक्षित रह जाता है, वह भी महिलाओं की भूमिकाओं में महत्वपूर्ण और दिलचस्प बदलाव है: आज अधिक से अधिक महिलाएँ कृषि-क्षेत्र में प्रबंधक के रूप में निर्णायक भूमिका निभा रही हैं। कृषि प्रबंधन में महिलाओं को आगे बढ़ाने के प्रमुख कारणों में से एक है, पुरुष का बेहतर जीवन की तलाश में ग्रामीण से शहरी इलाकों में प्रवास कर जाना। लेकिन पीछे रह जाने वाली ग्रामीण परिवारों की महिलाओं का क्या होता है?

महिलाओं को ग्रामीण अर्थव्यवस्था का रीढ़ कहा जाता है। विकासशील देशों में इनकी भूमिका और महत्वपूर्ण है। किसी घर में जमीन की हिस्सेदारी में होती भी हो तो वो जमीन के बहुत छोटे हिस्से पर। ज्यादातर महिलाओं को न तो खेती के लिए बकायदा प्रशिक्षण दिया जाता है और न ही बेहतर फसल होने पर उन्हें शाबासी मिलती है। जानकारों का मानना है कि कृषि कार्यों में महिलाओं की बढ़ती संख्या से उत्पादन में बढ़ोतरी हो सकती है, भूख और कुपोषण को भी रोका जा सकता है। इसके अलावा ग्रामीण अजीविका में सुधार होगा, इसका फायदा पुरुष और महिलाओं, दोनों को होगा। संयुक्त राष्ट्र के भोजन और कृषि संगठन के सर्वे में महिलाएं कृषि मामले में पुरुषों से हर क्षेत्र में आगे हैं, बस अधिकारों और सुविधाओं को छोड़कर।

विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार भारतीय कृषि में महिलाओं का योगदान करीब 32 प्रतिशत है, जबकि कुछ राज्यों (जैसे कि पहाड़ी तथा उत्तर-पूर्वी क्षेत्र तथा केरल राज्य) में महिलाओं का योगदान कृषि तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था में पुरुषों से भी ज्यादा है। भारत के 48 प्रतिशत कृषि से सम्बन्धित रोजगार में औरतें हैं जबकि करीब 7.5 करोड़ महिलाएँ दुग्ध उत्पादन तथा पशुधन व्यवसाय से सम्बन्धित गतिविधियों में सार्थक भूमिका निभाती हैं। आँकड़ों के मुताबिक कृषि उत्पादनों में महिलाओं का योगदान 20 से 30 प्रतिशत ही है।

जमीनों पर अधिकार ज्यादा मेहनत और उत्पादन करने के बावजूद कृषि लायक खेतों का मालिकाना हक पुरुषों के पास ही है। लैटिन अमेरिका में 80 फीसदी जमीन पर हक पुरुषों का है। एशियन देशों में तो स्थिति और खराब है। एशिया के देशों में जमीन पर महिलाओं का हक 10 प्रतिशत से भी कम है। इसके अलावा तकनीकी और नई शिक्षा के मामलों में भी महिलाओं को बराबर का अधिकार नहीं दिया जा रहा है। हाथ से की जाने वाले कृषि कार्य में 90 प्रतिशत संख्या महिलाओं की ही होती हैं। 75 प्रतिशत पैदावार में मशीनों की मदद नहीं ली जाती है। इतनी फसल पैदा करने में जो समय लगता है उसका 50 से 70 प्रतिशत हाथ से खेती करते

विशेषज्ञों का मानना है कि अगर कृषि में महिलाओं को बराबर का दर्जा मिले तो कृषि कार्यों में महिलाओं की बढ़ती संख्या से उत्पादन में बढ़ोत्तरी हो सकती है, भूख और कुपोषण को भी रोका जा सकता है। इसके अलावा ग्रामीण आजीविका में सुधार होगा, इसका लाभ पुरुष और महिलाओं, दोनों को होगा। महिलाओं को अच्छा अवसर तथा सुविधा मिले तो वे देश की कृषि को द्वितीय हरित क्रान्ति की तरफ ले जाने के साथ देश के विकास का परिदृश्य भी बदल सकती हैं।

की वजह से खर्च होता है। 97 देशों में केवल पांच प्रतिशत महिलाओं को ही तवज्जो दी जाती है, जबकि केवल 15 फीसदी महिलाओं को ही विशुद्ध रूप से किसान की संज्ञा दी जाती है। भारत में 6 करोड़ महिलाएं खेती के व्यवसाय से जुड़ी हैं।

किसानी को व्यवसाय के तौर पर अपनाने के लिए महिलाओं को जागरूक कर कृषि में बड़े योगदान के लिए महिला कृषकों को सरकार द्वारा सम्मानित भी किया जाना चाहिए। इसके अलावा कृषि क्षेत्र में महिला सशक्तिकरण के लिए महिला किसान दिवस के जरिए कई जागरूकता अभियान चलाए जा सकते हैं। महिला किसान बताती हैं, ''खेती में आज के समय में महिलाओं के पिछड़ने का सबसे बड़ा कारण तकनीकी ज्ञान की कमी है। अगर किसान महिला दिवस में सरकार महिलाओं को आधुनिक खेती के बारे में जागरूक कर सके, तो यह प्रयास सराहनीय होगा।

एक अनुमान के मुताबिक देश का करीब 70 फीसदी कृषि कार्य महिलाएं करती हैं लेकिन सिर्फ 10 फीसदी खेती की जमीन को ही वे अपना कह सकती हैं। इस सवाल का पहला जवाब तो यह है कि डेटा के डिजिटाइजेशन को तैयार हमारे देश में अभी तक भूमि स्वामित्व पर लिंग के आधार पर अलग किया गया डेटा नहीं है। हम यह पता नहीं कर सकते कि देश और राज्यों में कुल कितनी जमीन महिलाओं के नाम पर है और कितनी जमीन साझे तौर पर महिलाओं और पुरुषों की है।

खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार, भारतीय कृषि में महिलाओं का योगदान लगभग 32 प्रतिशत है जबकि 48 प्रतिशत महिलाएं कृषि संबंधी रोजगार में शामिल हैं जबकि 7.5 करोड़ महिलाएं दूध उत्पादन और पशुधन प्रबंधन में उल्लेखनीय भूमिका निभा रही हैं।

महिला कृषकों की समस्याएँ:

कृषि उत्पादन में महत्त्वपूर्ण भूमिका होते हुए भी उन्हें बहुत सी बाधाओं का सामना करना पड़ता है। कृषि कार्यों में लगी महिलाओं की अपनी कोई अलग पहचान नहीं है क्योंकि अर्थव्यवस्था की बागडोर प्रायः पुरुषों के पास रहती है। ज्यादातर के पास जमीनों के मालिकाना हक भी नहीं है। उनकी अशिक्षा, अनभिज्ञता, उदासीनता और अंधविश्वास रास्ते के रोड़े साबित होते हैं। पुरुषों की तुलना में उन्हें मजदूरी भी कम मिलती है। शिक्षा, सूचना तथा मनोरंजन के अवसर उन्हें अपेक्षाकृत कम मिलते हैं। खेतों के प्रबंधन की जिम्मेदारी संभालने वाली महिलाओं पर काम का बोझ भी अधिक रहता है, क्योंकि अतिरिक्त जिम्मेदारी लेने पर भी उनके घरेलु कामों में कोई कमी नहीं आती। इस अतिरिक्त जिम्मेदारी के कारण उन्हें आराम का समय नहीं मिलता, जिसके कारण उनकी सेहत पर भी असर पड़ता है।

अब 21वीं सदी में जब हर तरफ महिला सशक्तिकरण की बातें हो रहीं हैं, तो बातों से आगे बढ़ कर कुछ ठोस किये जाने की आवश्यकता है जैसेः-

अ) कृषि भूमि पर मालिकाना हक दिलवाना महज एक प्रशासनिक पहलू नहीं है, बल्कि इसका सामाजिक-आर्थिक निहितार्थ भी है। इस एक हक से व्यक्ति की पहचान, उसके अधिकार, निर्णय की क्षमता, आत्मनिर्भरता व आत्मविश्वास जुड़ा हुआ है। महिलाओं के पास जमीन पर अधिकार न होने से उनका सर्वांगीण विकास और सशक्तीकरण प्रभावित होता है। साथ ही गम्भीर और आपदा की स्थिति में अपने पैतृक भूमि का उपयोग करने में भी वे अक्षम होती हैं। अतः जरूरी है कि पैतृक जोत भूमि में पत्नी का नाम भी पति के साथ दर्ज हो, ऐसा कानून में प्रावधान किया जाना चाहिए।

आ) पुरुषों के पलायन के कारण कृषि कार्य पुरुषों से ज्यादा महिलाओं के हाथ में चला गया है, इसके बावजूद महिलाएँ कृषक नहीं हैं, क्योंकि उनके पास कृषि के मालिकाना हक का दस्तावेज नहीं

है अर्थात वह खेत की वास्तविक मालिक नहीं हैं।

इ) कृषि क्षेत्र में उनकी सहभागिता का दूसरा पहलू भी है, अधिकतर घरेलू काम जैसे जलावन की लकड़ी, पशुओं के लिये चारा, परिवार के लिये लघु वन उपज, पीने का पानी समेत हर काम में महिलाओं की केन्द्रीय भूमिका है, किन्तु उनकी पहचान श्रमिक अथवा पुरुष सहायक के रूप में ही है।

ई) मातृसत्तात्मक परिवारों को छोड़ दिया जाये तो वे सामान्य परिवारों में कभी घर की मालिक भी नहीं बन पाती हैं जिसकी वजह से कृषि सम्बन्धी निर्णय, नियंत्रण के साथ-साथ किसानों को मिलने वाली समस्त सुविधाओं में से 65 प्रतिशत कृषि कार्य का भार अपने कंधों पर उठाने वाली महिला वंचित रह जाती हैं और इस सबके बावजूद उन्हें किसान का दर्जा नहीं मिलता है।

उ) सरकार की विभिन्न नीतियों जैसे जैविक खेती, स्वरोजगार योजना, भारतीय कौशल विकास योजना इत्यादि में महिलाओं को प्राथमिकता दी जा रही है और यदि महिलाओं को अच्छा अवसर तथा सुविधा मिले तो वे देश की कृषि को द्वितीय हरित क्रान्ति की तरफ ले जाने के साथ देश के विकास का परिदृश्य भी बदल सकती हैं।

ऊ) महिलाओं को कृषि क्षेत्र के प्रति जागरूक करने और उन्हें इस क्षेत्र में सम्मानजनक स्थान दिलाने हेतु प्रति वर्ष 15 अक्टूबर को राष्ट्रीय महिला किसान दिवस मनाना। इस दिवस का उद्देश्य कृषि में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी को बढ़ाना है।

ऋ) सहकारी समितियों में महिलाओं को सदस्य बनाने के लिये अभियान चलाने की आवश्यकता है जिससे महिलाओं को भी सहकारी समितियों से ऋण, तकनीकी मार्गदर्शन, कृषि उत्पादों का विपणन आदि की सुविधा उपलब्ध हो सके। महिलाओं को संस्थागत-ऋण प्राप्त हो, इसके लिये खेत पर पति-पत्नी के नाम पर संयुक्त पट्टा होना चाहिए। महिलाओं की कुशलता और उनके कृषि औजारों की दक्षता बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए।

घ) महिलाओं को सशक्त बनाने और उनकी क्षमताओं का निर्माण करने और इनपुट प्रौद्योगिकी और अन्य कृषि संसाधनों तक उनकी पहुँच को बढ़ाने के लिये उचित संरचनात्मक, कार्यात्मक और संस्थागत उपायों को बढ़ावा दिया जायें जैसे कृषि नीति में उन्हें किसान क्रेडिट कार्ड जारी करना, फसल, पशुधन पद्धतियों, कृषि प्रसंस्करण आदि के माध्यम से जीविका के अवसरों का सृजन करवाना।

दरअसल व्यापक तौर पर कृषक समाज में महिलाओं की स्थिति को जांचने के लिए एक महत्वपूर्ण पैमाना है उनकी सहभागिता और उनके योगदान को मान्यता दिया जाना चाहिए। कृषक और कृषि कार्यों से संबंधित परिवारों की लगभग 91.7 प्रतिशत महिलायें खेती के लिए जमीन तैयार करने, बीज चुनने, अंकुरण संभालने, बुआई करने, खाद बनाने, खरपतवार निकालने, रोपाई, निराई-गुड़ाई, भूसा सूपने और फसल की कटाई का काम करती हैं। वे ऐसे कई काम करती हैं जो सीधे खेत से जुड़े हुए नहीं हैं, पर कृषि क्षेत्र से संबंधित होते हैं। मसलन पशुपालन का लगभग पूरा काम उनके जिम्मे होता है। जहां मछली पालन होता है, वहां उनकी भूमिका बहुत अहम होती है। ये खेतिहर महिलायें जिस तन्मयता से अपने काम को करती हैं उसके बदले में शायद ही कभी सही पारिश्रमिक दिया गया हो इन्हें इनके 'खेत-मालिकों' के द्वारा। गांठ और निशान पड़े हुए खुरदरे हाथों को शायद ही कभी अपनी मेहनत की वास्तविक कीमत मिली हो। सारी मलाई एक तरफ और सारे अभाव, रिरियाहट, वंचना और यातना-तकलीफ एक तरफ।

कृषि भूमि सहित विभिन्न प्राकृतिक संसाधन महिलाओं के पक्ष में हस्तांरित होने चाहिए। सरकार को ऐसी कोई नीति बनानी चाहिए, जिससे ये असमानता दूर हो सके और प्राकृतिक संसाधन सिर्फ पुरुषों के हाथ में न रहें।

सरकार द्वारा उठाए गए कदम

1) कृषि में महिलाओं की अहम भागीदारी को ध्यान में रखते हुए कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने वर्ष 1996 में भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद के अन्तर्गत केन्द्रीय कृषिरत महिला संस्थान की स्थापना भुवनेश्वर में की। यह संस्थान कृषि में महिलाओं से जुड़े विभिन्न आयामों पर कार्य करता है।

2) इसके अलावा, भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद के 100 से अधिक संस्थानों ने कई तकनीकों का सृजन किया ताकि महिलाओं की कठिनाइयों को कम कर उनका सशक्तिकरण हो।

3) देश में 680 कृषि विज्ञान केन्द्र हैं। हर कृषि विज्ञान केन्द्र में एक महिला वस्तु विशेषज्ञ हैं। वर्ष 2016-17 में महिलाओं से सम्बन्धित 21 तकनीकियों का मूल्यांकन किया गया और 2.56 लाख महिलाओं को कृषि सम्बन्धित क्षेत्रों जैसे सिलाई, उत्पाद बनाना, वैल्यू एडिशन, ग्रामीण हस्तकला, पशुपालन, मधुमक्खी पालन, पोल्ट्री, मछली पालन आदि का प्रशिक्षण दिया गया।

4) कृषि मंत्रालय के स्तर से भी निरंतर इस बात के प्रयास किये जा रहे हैं कि कृषि कार्यों में लगी ग्रामीण महिलाओं की स्थिति में तेजी से सुधार हो। हमारे देश में कृषि विज्ञान केन्द्रों के द्वारा विकास हेतु कृषि कार्यों में लगी महिलाओं के लिये विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये जाते हैं। इनके द्वारा सिर्फ संस्थागत प्रशिक्षण की ही व्यवस्था नहीं की गई है बल्कि गाँवों में ''महिला चर्चा मंडल'' स्थापना की गई है और उनके माध्यम से महिलाओं के पास उन्नत कृषि एवं गृह विज्ञान के तकनीकों को पहुँचाने का प्रयास किया जा रहा है।

5) आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से महिलाओं के लिये कृषि, पशुपालन, बाल विकास तथा पोषाहार से सम्बन्धित तकनीकी सूचनाएँ प्रसारित की जाती है।

6) इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रमुख योजनाओं, कार्यक्रमों और विकास सम्बन्धी गतिविधियों के अन्तर्गत महिलाओं के लिये कम-से-कम 30 प्रतिशत धनराशि का आवंटन सुनिश्चित किया गया है।

7) साथ ही विभिन्न लाभार्थी-उन्मुखी कार्यक्रमों, योजनाओं और मिशनों के घटकों का लाभ महिलाओं तक पहुँचाने के लिये महिला समर्थित गतिविधियाँ शुरू करना तथा महिला स्वयं सहायता समूहों के गठन पर ध्यान केन्द्रित करना ताकि क्षमता निर्माण जैसी गतिविधियों के माध्यम से उन्हें सूक्ष्म ऋण से जोड़ा जा सके और सूचनाओं तक उनकी पहुँच बढ़ सके एवं साथ ही विभिन्न स्तरों पर निर्णय लेने वाले निकायों में उनका प्रतिनिधित्व हो।

8) महिला सशक्तिकरण के लिये तो वैश्विक-स्तर पर भी तमाम प्रयास किये गए हैं किन्तु इसका समग्र रूप में अब तक लाभ नहीं लिया जा सका है।

महिला सशक्तीकरण और महिला शिक्षा की दिशा में किये जा रहे प्रयासों का भी यही हाल है। किन्तु इसके विपरीत सामाजिक रुझान भी यह है कि लड़कियों के प्रति तमाम अंकुश और शोषण के बावजूद आज महिलाओं के बीच अपने पैरों पर खड़े होने की जिद भी समाज में देखने को मिलती है। वास्तविक भारत यानी ग्रामीण क्षेत्र की जो तस्वीर है उसे बदलने की भी जरूरत है। वैसे महिलाओं की शिक्षा, आर्थिक- सामाजिक सशक्तिकरण के लिये काफी प्रयास किये गए हैं किन्तु जरूरत इस बात की है कि बदलते समय के अनुकूल उनके हक में समुचित विधान बनाए जाएँ। महिला कृषक को वैधानिक आधार मिले, तब जाकर हम समाज में वास्तविक बदलाव ला सकते हैं। इसके साथ ही उनकी सामाजिक स्वीकृति भी मिलनी प्रारम्भ होगी। इन सबके साथ कृषि और सम्बद्ध गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी को सुदृढ़ बनाने के लिये, केन्द्र सरकार द्वारा उचित संरचनात्मक, कार्यात्मक और संस्थागत उपायों द्वारा महिलाओं को सशक्त, क्षमता निर्माण और इनपुट प्रौद्योगिकी तक उनकी पहुँच बढ़ाई जा रही है। भारत सरकार ने राज्यों को विधवा, अबला, परित्यक्त और निराश्रित महिलाओं की पहचान करने की सलाह दी है जिन्हें मनरेगा के तहत 100 दिन का रोजगार प्राप्त हो। जब कृषि क्षेत्र और महिला के उत्थान की बात आती है, तो बागवानी की भूमिका को भूलना नहीं चाहिए। ये भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

महिला किसानों के अधिकारों के लिये कार्य कर रहे युवा सामाजिक कार्यकर्ता प्रशांत सिंह कहते हैं कि जमींदारी उन्मूलन के 60 वर्षों के बाद भी महिला किसानों द्वारा बिना स्वामित्व की जमीन पर काम करना इस ऐक्ट की भावना का उल्लंघन जैसा है। भूस्वामित्व और किसानी के बीच का अंतर भारतीय कृषि संरचना का बुनियादी अवरोध है। इसके कारण सीमित संसाधनों का असक्षम उपयोग हो रहा है। भूमि, मकान, पशुधन और अन्य परिसंपत्तियों व कृषि संसाधनों पर अधिकार का अभाव महिला किसानों की कार्यकुशलता के रास्ते में

एक बड़ा अवरोध है। महिला किसानों को न कर्ज मिल पाता है, न ही सिंचाई सुविधा। उत्तर प्रदेश जैसे राज्य में महिला के नाम पैतृक जमीन के हस्तांतरण पर 06 प्रतिशत स्टांप शुल्क देय है। किंतु छोटे-मझोले किसानों के लिए इतनी बड़ी धनराशि देकर जमीन हस्तांतरण कराना सम्भव नहीं है। महिलाओं को भूस्वामित्व देने तथा उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने हेतु यदि सरकार वर्तमान कानूनों में थोड़ी सी शिथिलता बरतते हुए पति द्वारा पत्नी को पैतृक जोत जमीन हस्तातंरित करने पर स्टांप शुल्क माफ करने का प्रावधान कर दे तो इस छोटे से कदम से महिला किसानों की स्थिति में बड़ा ही सकरात्मक परिवर्तन आ जायेगा। इतिहास साक्षी है कि जब भी कृषि पर संकट के बादल छाये तो सभ्यता ने नारी के सहारे ही समाधान खोजा है। जब त्रेता में राजा जनक के राज्य में सूखा पड़ा था तब राजा के साथ रानी ने हल चलाया तो बरसात हुई थी। किन्तु आश्चर्य है कि परम्परा में महिलाओं का ही हल चलाना गुनाह करार दिया गया।

लेकिन इस विषय में सही निष्कर्ष तभी निकाला जा सकता है जब और आँकड़े इकट्ठे किये जाएँ और उनका विश्लेषण किया जाए। हमें पुरुषों और महिलाओं के कार्य-समय के बारे में जानना होगा और उनके द्वारा किये गये काम के समय के आँकड़े जुटाने होंगे। प्रवास से संबंधित ऐसे आँकड़े मिलने पर ही हम इस बात को बेहतर समझ पाएँगे कि प्रवासियों के मूल स्थान से बाहर जाने पर घर पर ही रहने वाली महिलाएँ किस प्रकार से प्रबंधन करती हैं। विशेषज्ञों का मानना है कि अगर महिला और पुरुषों में भेद कम किया जाए तो स्थिति सुधर सकती है। अगर अंतर कम किया जाए और कृषि में महिलाओं को बराबर का दर्जा दिया जाए तो खाद्य और पोषण की समस्या को खत्म किया जा सकता है।

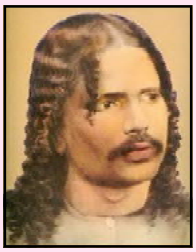

निज भाषा उन्नती है, सब उन्नती को मूल, बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटते न हिय को सूल

भारतेन्दु हरिशचन्द्र

समस्त रोगों का रामबाण औषधि-मिट्टी

संतोष कुमार सिंह[1], विजय कुमार[2] एवं जितेन्द्र चन्द चन्दोला[3]

[1]सहायक प्राध्यापक, (मृदा विज्ञान), [2]प्रयोगशाला तकनीशियन (मृदा विज्ञान) एवं
[3]विषय वस्तु विशेषज्ञ (उद्यान विज्ञान), कृषि विज्ञान केन्द्र, मांझी, सारण
डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, बिहार
E-mail: vkvijaymadhubani@gmail.com

सर्वाधारे सर्व बीजे सर्व शक्ति समन्विते।
सर्व कामप्रदे देवि सर्वेष्टं दोहिमे धरे।।
(ब्रहावैवर्त पुराण)

''हे पृथ्वी देवी तू सबकी आधार, सबकी बीजरूप, सब प्रकार की शक्ति से युक्त तथा समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाली है, मेरा कल्याण कर।''

मिट्टी एक अत्यन्त साधारण वस्तु समझी जाती है और इसी कारण उसे विशेष महत्व नहीं दिया जाता। इस दृष्टि से तो उसे बहुत घटिया निकृष्ट दर्जे की चीज माना गया है और जो आदमी बिल्कुल निकम्मा होता है उसे मिट्टी की उपमा दी जाती है। पर इसी रद्दी और निकम्मी समझी जाने वाली मिट्टी में बड़े-बड़े अनमोल गुण भरे हुए है। यह मिट्टी संसार की कारणभूत तो है ही और मनुष्य-जीवन का आधार भी है। साथ ही यह मानव स्वास्थ्य की रक्षक और समस्त रोगों की निवारक भी है। इसमें सर्दी और गर्मी दोनों को रोक सकने की अद्भूत शक्ति होती है। किसी भी प्रकार की चोट लगने, तेज हथियार से कट जाने, आग से जल जाने, बन्दूक की गोली लगने, फोड़े-फुन्सियाँ होने दाद-खाज, खारिश (एक्जिमा) होने, रोग विष के कारण किसी स्थान के सूज जाने, बिच्छू, ततैया, साँप के काट लेने, हड्डी के टूट जाने आदि बीसियों रोगों तथा दुर्घटनाओं में तत्काल गीली मिट्टी लगा लेने से जादू का सा प्रभाव दिखाई देता है।

मिट्टी की सोखने की शक्ति

मिट्टी की इस आश्चर्यजनक शक्ति का कारण उसकी विजातीय विषों तथा कीटाणु जनित विकारों को सोख लेने की शक्ति होती है। पीड़ा के स्थान पर लगाते ही मिट्टी अपना काम करने लगती है और कभी-कभी जब कि रोग का विकार तीव्र होता है दस-पाँच मिनट में ही गर्म हो जाती है जिससे उसे हटाकर दूसरी मिट्टी रखना आवश्यक होता है। मिट्टी की पट्टी प्रायः हर बीमारी में फायदा पहुँचाती है। अन्दरूनी गहरे विकार जहाँ तक दवाओं का असर ठीक तरह नहीं पहुँचता मिट्टी के प्रभाव से आराम हो जाते है। गुर्दे की खराबी, मूत्राशय के रोग, पेट के भीतरी फोड़े, गर्भाशय के विकार, दिल की धड़कन, जिगर की सूजन आदि प्राणघातक रोग भी निरन्तर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करते रहने से अच्छे हो जाते है। पेट का दर्द, कब्ज, आँतों का दाह, संग्रहणी, पेचिश, पाण्डुरोग आदि में भी पेट पर मिट्टी की पट्टी बाँधने से बहुत लाभ होता है।

मिट्टी के अनेक प्रयोग

महात्मा गाँधी मिट्टी के उपचार में बहुत अधिक विश्वास रखते थे और उन्होंने बड़े-बड़े रोगों को मिट्टी के प्रयोग से ठीक किया था। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है कि पेट, सिर और आँख के दर्द एवं चोट की सूजन मिट्टी की पुल्टिस से दो-तीन दिन में आराम हो जाता है। में पहले पेट की खराबी के कारण एनोज फ्रूट साल्ट के बिना कभी निरोग नहीं रह सकता है लेकिन सन् 1904 में जब मुझे मिट्टी की उपयोगिता मालूम हुई तब मैंने उसका आश्रय लिया और तब से आज तक कोई ऐसा अवसर नहीं आया जब कि मुझे फ्रूट साल्ट का प्रयोग करना पड़ा हो। कड़े से कड़े ज्वर में इसकी पट्टी सिर पर और पेडू पर बाँधने से एक-दो घंटे में ज्वर कम हो जाता है। चर्म रोग जैसे खुजली, दाह और फोड़े इसके उपचार से शीघ्र आराम होते है। जले हुए स्थान पर इसका लेप करने से जलन कम हो जाती है और वहाँ फफोला नहीं पड़ता। गर्मी का रोग भी इससे अच्छा हो सकता है। पाले से जब हाथ पैर लाल पड़ जाते है और सूज जाते हैं तब इसका प्रयोग बहुत लाभ पहुँचाता है। हड्डियों के जोड़ का दर्द भी इससे ठीक होता है। इन अनुभवों से में इसी परिणाम पर पहुँचा हूँ कि इसका उपचार घरेलू ढंग पर बहुत लाभदायक सिद्ध होता है।

महात्मा जी मिट्टी-चिकित्सा के कितने अधिक भक्त थे और किस प्रकार

उसे एक ईश्वरीय चमत्कार मानते थे इसका वर्णन करते हुए श्री प्रभुदयाल विद्यार्थी ने अपने एक लेख में बताया है कि ''यूरोप के लोग जब गाँधी जी को सिर या पेट पर मिट्टी की पट्टी रखे हुये देखकर आश्चर्य करने लगते तो वे हँसते हुये कहते - मुझे डाक्टरी इलाज में उतना विश्वास नहीं जितना इस मिट्टी में है। शरीर में कोई भी गड़बड़ी होने पर बापू मिट्टी का ही प्रयोग करते थे। पेट में कुछ खराबी है तो मिट्टी का प्रयोग, सिर में दर्द है तो मिट्टी का प्रयोग, चेचक है तो मिट्टी और ज्वर है तो भी मिट्टी। खून का दबाव (ब्लड प्रेशर) बढ़ता तो भी मिट्टी का ही प्रयोग करते थे। अधिक गर्मी पड़ती तो भी बापू मिट्टी की गीली पट्टी का प्रयोग करके खस की टट्टी की तरह उसके असर को मिटा देते थे। बरसाती रोगों से बचने के लिये भी मिट्टी की पट्टी से ही कुनैन का काम लेते थे।

इग्लैण्ड के एक प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डॉ. पिट कैरन नोत्स ने अपने एक लेख में मिट्टी के गुणों पर पूर्णतः प्रकाश डाला है। उनका कथन है कि रासायनिक प्रभाव के अतिरिक्त गीली मिट्टी की पट्टी लगाने पर जो आद्र उष्णता उत्पन्न होती है तथा जो मिट्टी के शरीर से चिपकने की क्रिया होती है इन क्रियाओं के प्रभाव रोगों को उखाड़ने में बड़े काम के सिद्ध होते है।

मिट्टी मिले हुये गाढ़े जल से स्नान करने से साइटिका रोग अच्छा हो जाता है और पैर को कीचड़ स्नान कराने से पैर के सारे रोग दूर हो जाते है। हाथ के जलने पर या उँगली के कुचल जाने पर फौरन तमाम बाँह पर मिट्टी का लेप बारम्बार करना जादू का सा असर करता है।

बहुत से लोग कब्ज दूर करने के लिये भोजन के ऊपर थोड़ी सी बलुआ मिट्टी खा लेते है जिससे पाचन में मदद मिलती है और आँते आसानी से शूद्र और साफ हो जाती है इससे और भी अनेक भीतरी रोगों को लाभ पहुँचता है और कोष्ठबद्धता तो निक्षप रूप से दूर हो जाती है।

विभिन्न रोगों का इलाज

इतना ही नहीं मिट्टी द्वारा विधिपूर्वक चिकित्सा करने से सभी रोग स्थायी रूप से आराम होते है, क्योंकि इससे उनका विकार बाहर निकल जाता है और बाद में अपना आहार-विहार प्रकृति के अनुकूल रखने से दुबारा उस रोग के प्रकट होने की कोई सम्भावना नहीं रहती। विभिन्न रोगों में मिट्टी का प्रयोग किस विधि से किया जाता है इस विषय को एक अनुभवी चिकित्सक के शब्दों में यहाँ दते हैं -

कब्ज सब रोगों की जड़ है और इसकी अचूक चिकित्सा मिट्टी की पट्टी लगाना है। आरम्भ में ठंडी के बजाय गर्म मिट्टी की पट्टी अधिक लाभ करती है। जब कब्ज सख्त हो तो पट्टी के बाद एनीमा भी लेना चाहिये और अन्नाहार को त्याग कर फल और शाक का ही सेवन करना चाहिये।

चाहे जिस प्रकार का ज्वर हो, यदि उसमें सब प्रकार का भोजन त्याग कर मिट्टी की पट्टी तथा एनीमा का प्रयोग करके पेट को साफ कर दिया जायेगा तो वह शीघ्र ही अच्छा हो जायेगा। दिन में दो बार, सुबह और शाम मिट्टी की पट्टी बाँधना और उसके बाद एनीमा देना चाहिये। अगर बुखार तेज हो तो दिन रात में 5-6 बार भी मिट्टी की पट्टी लगाई जा सकती है, पर एनीमा दो बार से अधिक देने की आवश्यकता नहीं। जब ज्वर की अधिकता से रोगी की तबियत घबड़ाने लगती है तो 5-5 मिनट पर मिट्टी की पट्टी बदली जाती है और सिर पर भी मिट्टी की पट्टी लगानी पड़ती है। इससे ज्वर की गर्मी और घबराहट कम हो जाती है।

सब प्रकार के फोड़े-फुंसियों पर दो-दो घंटा पर मिट्टी की गरम पट्टी रखनी चाहिए और उसे आधा घंटा तक लगाये रखना चाहिये। पर उसे सूखने के पहले जरूर हटा देना चाहिए अन्यथा लाभ के स्थान पर उल्टी हानि होती है। फोड़े पर दिन में एक बार भाप भी लगानी चाहिये और मिट्टी की गरम ठंडी दोनों पट्टी भी देनी चाहिये, जिससे शीघ्र आराम होगा। इस प्रकार उपचार करने से फोड़ा या तो बैठ जायेगा या पक कर स्वयं फूट जायेगा। यदि फोड़ा फूट कर घाव हो गया हो तो भी मिट्टी लगाने में किसी प्रकार का भय नहीं करना चाहिये।

चर्म रोग-जैसे खाज, खुजली, सूजन, दाद, सफेद दाग, उपदंश के घाव आदि-इन पर गरम मिट्टी की पट्टी लगाने से सदैव लाभ होता है। साथ ही पेडू पर भी पट्टी लगानी चाहिए और एनीमा द्वारा पेट की सफाई का भी पूरा ध्यान रखना चाहिये उपवास, फलाहार आदि के प्रयोग द्वारा भी पेट की सफाई करनी चाहिए। खाज में रोग के स्थान पर भाप देना भी लाभदायक होता है। इसमें मिट्टी की पट्टी को बहुत जल्दी-जल्दी बदलना चाहिये।

पेचिश और पेट के अन्य रोग-इन सब रोगों में गर्म मिट्टी की पट्टी बहुत लाभ पहुँचाती है। सुबह शाम दो बार

आधे-आधे घंटे तक पट्टी लगाएँ। यदि रोग तेज हो तो कई बार भी लगाई जा सकती है। पेचिश में पेडू पर गरम पानी की बोतल और गर्म कपड़े से भी सेक करना चाहिए।

जहरीले जंतुओं और पागल कुत्ता आदि का काटने अथवा डंक मारने के स्थान पर बहुत जल्दी-जल्दी 5-5 या 10-10 मिनट पर मिट्टी की पट्टी लगाते रहना चाहिए। क्योंकि विष के प्रभाव से वह शीघ्र ही गर्म हो जाती है। इस प्रकार के उपचार से थोड़ी ही देर में डंक की जलन और सूजन जाती रहती है। साँप के काटे मनुष्य की हालत अगर खतरनाक जान पड़े तो उसे पूरी लम्बाई का गढ्डा खोदकर उसमें गाढ़ देना चाहिए। केवल सर बाहर रहे। इस विधि से भीतर ही भीतर बड़ी गर्मी पैदा होती है और चारों तरफ की मिट्टी जहर को सोख लेती है जिससे पीड़ित मनुष्य 24 घंटे में ही निरोगी हो जाता है।

इसके अतिरिक्त कान, दाँत, आँख के दर्द, प्रसव पीड़ा, गर्भ में बच्चे का मर जाना, प्रदर आदि साथ ही स्त्री रोगों, दमा, गठिया, स्वप्नदोश, पागलपन जैसे पुराने रोगों, आग से जलना, भाले का घाव, बन्दूक, छुरी आदि की चोटें सब में मिट्टी अन्य उपायों से अधिक कारगर और शीघ्र फल देने वाली होती है। इन रोगों या दुर्घटनाओं में पीड़ित स्थान पर मिट्टी की पट्टी बार-बार लगानी चाहिये।

अन्य साधारण रोगों का उपचार

चूल्हे की जली मिट्टी से दाँतों में मंजन करने से वे अच्छी तरह साफ हो जाते है और नीरोग रहते है, पायरिया की शिकायत जाती रहती है। पीली मिट्टी के डेले पर पानी डाल कर सूँघने से नकसीर, जुकाम आदि अच्छे हो जाते है। लू लग जाने पर पैरों और सिर पर मिट्टी थोप देने से दाह शान्त होकर ठण्डक आ जाती है। मेर भर पानी में छटाँक भर मिट्टी घोलकर उसे थोड़ी देर रख दे। जब मिट्टी नीचे बैठ जाय तो पानी को निथार पर धोने से ज्वर, तृषा, दाह, जलन, निद्रानाश आदि गर्मी के उपद्रव शान्त होते है। इन सब उपचारों का प्रचार हमारे घरों में पुराने समय से है और स्त्रियाँ स्वयं उन्हें करती रहती है।

धातु के बर्तन के बजाय मिट्टी की हांडी में भोजन पकाना, मिट्टी के तवे पर रोटी बनाना, मिट्टी के कुल्हड़ में पानी या दूध पीना हमारे देश में लाभदायक माना गया है। इससे भोजन में कोई विकार उत्पन्न होने की आशंका नहीं रहती है और उसका स्वाद भी अधिक हो जाता है। अगर कढ़ाई और मिट्टी की हांडी में दूध को अलग-अलग औटा कर पिया जाय तो उनके स्वादों में अन्तर जान पड़ेगा। इन बातों से भी मिट्टी की उपयोगिता और उसके लाभों का पता चलता है।

एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि मिट्टी बिल्कुल साफ और शुद्ध हो। वैसे तो जहाँ जैसी मिट्टी मिले उसी से काम चलाना पड़ता है पर बालू मिली काली या चिकनी मिट्टी सर्वोत्तम होती है। यदि नदी किनारे की ऐसी बलुआ मिट्टी न मिले तो चिकनी मिट्टी में ऊपर से बालू मिला देने से भी पट्टी के लायक लाभदायक मिट्टी तैयार हो जाती है। यह देख लेना चाहिए कि उसमें गोबर, लीद, खाद आदि कोई हानिकारक चीज न मिली हो। उसे भली प्रकार कूटकर चलनी से छान लेना चाहिये और पानी डालकर आटे की तरह गूँथकर काम में लाना चाहिये। जहाँ तक सम्भव हो मिट्टी चार-छः घंटे पहले की भीगी हो तो अच्छा रहता है। एक बार की लगाई मिट्टी दुबारा काम में नही लाई जा सकती, क्योंकि उसमें देह के विकार खिंचकर आ जाते है। हर एक गृहस्थी में ऐसी छनी हुई मिट्टी का एक बड़ा डिब्बा भरकर तैयार रखना चाहिये। जिससे आवश्यकता पड़ने पर उसका तुरन्त उपयोग किया जा सके। क्योंकि दुर्घटनाओं में मिट्टी का प्रयोग शीघ्र से शीघ्र करना ही आवश्यक और लाभदायक होता है।

अगर आप सूर्य की तरह चमकना चाहते है तो पहले सूर्य की तरह जलना सीखें।

डॉ. ए.पी.जी. अबदुल कलाम

फैजाबाद में लांगनः रोचक कथ्य और तथ्य

डॉ. राज किशोर

वनस्पतिविद एवं विज्ञान संचारक

पूर्व उद्यान अधीक्षक, डा. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या (फैजाबाद)

उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र का प्रमुख जिला फैजाबाद, जो अब अयोध्या के नाम से जाना जाता है। इस पौराणिक नाम से त्रेतायुग की पहचान कराती यहाँ की धरती पर लॉन्गन की उद्भव कथा लगभग 25 वर्ष पुरानी है। उस समय मैं डा. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद, उ.प्र. में 'उद्यान अधीक्षक' के पद पर कार्यरत था। फैजाबाद में उस समय प्राइवेट नर्सरियां नहीं थीं और वर्षा ऋतु शुरू होने पर तमाम पौध विक्रेता बाहर से आकर शहर की सड़कों के फुटपाथों पर बैठकर अनेकानेक प्रकार के पौधों का विक्रय किया करते थे। विश्वविद्यालय के मेरे एक मित्र ने ऐसे ही किसी विक्रेता से लगभग दो फुट लम्बा लीची का एक पौधा खरीद कर अपने आवास में रोपित कर दिया। लगभग पांच वर्ष के उपरांत जब लीची के इस पेड़ पर फल आये तो वे थे तो लीची जैसे ही, लेकिन आकार में फल बहुत ही छोटे थे। मित्र ने मुझे बुलाकर पेड़ और फलों को दिखाया और पूछा कि लीची के फल इतने छोटे-छोटे क्यों हो गए हैं? मुझे भी उन फलों को देखकर कुछ समझ में नही

आया, क्योंकि तब तक मैंने इस प्रकार के फलों के बारे में न तो कहीं पढ़ा था और न ही कहीं देखा था। मैंने अपने मित्र को आश्वासन दिया कि मैं इस फल के बारे में जानकारी करता हूँ, लेकिन मैं उन्हें कोई जानकारी प्रदान नहीं कर सका। समय बीतता गया और तब तक वे फल आधे-अधूरे पक चुके थे। मित्र ने मुझे सूचित किया कि वो अब उस पेड़ को काट देंगे। मैंने उनसे निवेदन किया फलों को पक जाने, जिससे मैं कुछ पौधे तैयार कर सकूँ। इस बीच मैंने पेड़ में कुछ गूटी भी बांध दी थी। इस प्रकार उन पके फलों के बीजों से तथा गूटी से कुछ नए पौधे तैयार किये। मैंने अपने आवास की दूसरी मंजिल पर एक छोटा सा बगीचा बना रखा है। इस बगीचे को मैंने 'हैंगिंग गार्डेन' नाम दिया है। अपने इसी हैंगिंग गार्डन में मैंने उन पौधों को गमलों में रोप दिया।

फैजाबाद में कई अच्छे राजकीय उद्यान हैं। इनमें से दो उत्कृष्ट राजकीय उद्यान पवित्र पौराणिक सरयू नदी के तट पर पौराणिक महत्व के 'गोप्रतार घाट' (अपभ्रंश के कारण 'गुप्तार घाट') क्षेत्र में अवस्थित हैं। इन्ही उद्यानों में से सबसे आकर्षक उद्यान 'श्रीपंचमुखी महादेव राजकीय उद्यान' है जो अति प्राचीन पंचमुखी आकृति युक्त शिवलिंग मंदिर के नाम से जाना जाता है। इस उद्यान के तत्कालीन गार्डेन इन्चार्ज श्री घनश्याम वर्मा (अब सेवानिवृत्त) मेरे अभिन्न मित्र हैं। उनके इस उद्यान परिसर में मैं समय-समय पर दुर्लभ और पौराणिक महत्व के अनेक पौधों का रोपण करता रहा हूँ। श्री वर्मा जी से वार्ता के उपरांत इसी पंचमुखी उद्यान में आज से लगभग 20 वर्ष पूर्व मैंने अपने गमलों में उगाये उन्ही दो पौधों (एक बीजू और एक कलमी) का रोपण कर दिया था। परन्तु इनमें से केवल कलमी पौधा ही विकसित हो सका।

श्रीपंचमुखी महादेव राजकीय उद्यान में मेरे द्वारा रोपित वह पौधा समय आने पर विकसित होकर फल देने लगा। हर साल उसकी भरपूर फलत लोगों को आकर्षित करती। अब हम दोनों लोगों के सामने एक नई समस्या आ गई। वह यह कि उद्यान में आने वाले शहर के आगन्तुक और बागवानी प्रेमी इस फल का नाम पूछते थे। या फिर यह सवाल करते थे कि ये कौन सा फल है और कहाँ से मंगाया गया है? चूंकि जब मैं ही इस फल के बारे में कुछ नहीं जानता था, तो मैं गार्डेन इंन्चार्ज को क्या बताता। फिर लोगों के सवालों और जिज्ञासाओं से बचने के लिए हम दोनों लोगों ने निश्चय किया कि फिलहाल इस लीची का नाम 'मिनी लीची' बताया जाए, क्योंकि तब तक फैजाबाद शहर के उद्यान प्रेमियों के बीच इस लीची की चर्चा आम हो चुकी थी। अब शौकीन लोग उद्यान में केवल इसे ही देखने आते थे। उस फल का नामकरण 'मिनी लीची' कर तो दिया था, लेकिन इससे मैं संतुष्ट

नहीं था। इस फल की वास्तविक जानकारी पाने के लिए मेरे मन में उत्कंठा बराबर बनी हुई थी। इसी बीच हिन्दी भाषा के एक समाचारपत्र में कुछ रिक्त पदों को भरे जाने विषयक 'राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र', मुसहरी, मुजफ्फरपुर, बिहार का एक विज्ञापन प्रकाशित हुआ। इसी विज्ञापन से फैजाबाद के इस फल की वास्तविक जानकारी प्राप्त करने की कथा ने रोचक मोड़ ले लिया। इस विज्ञापन से अनुसंधान केन्द्र के विषय में जानकारी होने तथा उसका डाक का पूरा पता मिल जाने से मेरी खुशी का पारावार नहीं था। मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि अब मेरी इस 'मिनी लीची' के विषय में सम्पूर्ण वैज्ञानिक जानकारी मिलना संभव हो सकेगा।

मैंने श्रीपंचमुखी महादेव राजकीय उद्यान में स्वयं द्वारा रोपे उस पेड़ की फलित अवस्था में रंगीन फोटो तथा अन्य सम्बंधित विवरण तैयार करवाए। फिर उन्हें बिना देरी किए निदेशक महोदय को सम्बोधित एक पत्र राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र के पते पर रजिस्टर्ड पत्र द्वारा प्रेषित कर दिया। पत्र में मैंने निवेदन किया कि संदर्भित फल के बारे में मुझे जानकारी प्रदान करने का कष्ट करें। शीघ्र ही निदेशक डॉ. विशाल नाथ जी का फोन मेरे पास आया कि उन्हें मेरा सन्दर्भित पत्र मिल गया है और उनके नेतृत्व में केन्द्र के वैज्ञानिकों की एक टीम पंचमुखी उद्यान, फैजाबाद स्थित पेड़ को देखने के लिए आना चाहती है। यह जनवरी, 2017 के अंतिम सप्ताह की बात है। वैज्ञानिकों का आगमन की बात मेरे अत्यंत ही उत्साहदायी थी। आखिरकार वह दिन भी आ गया। 2 फरवरी, 2017 को निदेशक डॉ. विशाल नाथ जी का फैजाबाद आगमन हुआ। मैं उन्हें गुप्तार घाट स्थित राजकीय उद्यान में उस पेड़ के पास ले गया, जिसके नाम और पहचान की पहेली में मैं लगभग ढाई दशक से उलझा हुआ था। डॉ. विशाल नाथ जी और उनके वैज्ञानिक साथियों ने उस पेड़ का भलीभांति अवलोकन किया। हम लोगों के बीच उस पेड़ के विषय में गंभीर वैज्ञानिक चर्चा हुई। वैज्ञानिक दल इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यह पेड़ मूलतः लॉन्गन का है। लॉन्गन के बारे मैंने कभी पढ़ा या सुना नहीं था। अब मेरी जिज्ञासा और बढ़ चली थी।

पंचमुखी राजकीय उद्यान, फैजाबाद में स्थित लॉन्गन के विषय में निदेशक महोदय ने सबसे रोचक वैज्ञानिक तथ्य यह बताया कि इसकी अच्छी फलत के लिए इसके दो पेड़ होने आवश्यक होते हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि उद्यान में लॉन्गन का सिर्फ एक ही पेड़ है और साथ ही पूरे फैजाबाद शहर का यह इकलौता लॉन्गन का पेड़ है। यह हकीकत भी चौंकाने वाली थी कि अकेला होने के बावजूद लॉन्गन का यह पेड़ प्रतिवर्ष भारी मात्रा में (लगभग एक कुन्तल

दैनिक जागरण

कभी फेंका जा रहा था, अब हो रहा शोध

शोध के दायरे में मलेशियाई लीची का पेड़

'लोगन' लीची का रहस्य जानने पहुंची टीम

के आस-पास) फल देता है। (चित्र संख्याः 01 में फलित अवस्था में लॉन्गन का पेड़ तथा चित्र संख्या 2 में वर्तमान अवस्था में लॉन्गन का पेड़)।

इस प्रकार अन्ततोगत्वा मुझे अपने तथाकथित 'मिनी लीची' के वास्तविक वैज्ञानिक नाम- लॉन्गन और इस के वानस्पतिक नाम, 'डेमोकारपस लॉन्गन '(वानस्पतिक कुल- सेपिन्डेसी) की पूर्ण वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त हो गई। यह मेरे लिए एक उपलब्धि से कम नहीं थी। फैजाबाद में लॉन्गन का यह अन्वेषण-प्रसंग मुझे आज भी रोमांचित और उत्साहित करता है। पंचमुखी राजकीय उद्यान, गोप्रातार घाट, फैजाबाद, अयोध्या, उ.प्र. में राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र के निदेशक डॉ. विशाल नाथ जी द्वारा लॉन्गन के पेड़ का अवलोकन-भ्रमण का विस्तृत समाचार हिन्दी भाषा के राष्ट्रीय स्तर के समाचारपत्र 'दैनिक जागरण' के 03 फरवरी 2017 अंक में पृष्ठ संख्या-5 पर सचित्र प्रकाशित हुआ था।

दहेजप्रथा

सावन कुमार

अवर श्रेणी लिपिक

भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर (बिहार)

दहेजप्रथा हमारे समाज के लिए एक अभिशाप है या हम ये कहें कि दहेजप्रथा एक ऐसा कोढ़ है जो दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है और हमारे समाज को दीमक की तरह खोखला करता जा रहा है। सबसे पहले हम यह जाने कि दहेजप्रथा की शुरूआत कहाँ से हुई और यह क्यों प्रचलन में आया?

पुराने जमाने में लड़की वालों की तरफ से लड़के वालों को उपहार स्वरूप कुछ वस्तुएं दी जाती थी। जैसे- घोड़ा, ऊँट, बकरी आदि लेकिन फिर जैसे-जैसे भारत ने प्रगति की तो लोगों के सोचने समझने की मांसिकता भी बदलती गई। लड़के वालो को जो वस्तुएँ उपहार के रूप में मिलती थी अब वे लड़की वालों पर उपहार देने के लिए विशेष मांग करने लगे हैं। जबसे लड़के वालों के तरफ से यह मांग होने लगी है तब से दहेजप्रथा की उत्पत्ति मानी जाती है। इसका एक अन्य पहलू यह भी है कि जब लड़के और लड़की की शादी कर दी जाती है तो उसकी आर्थिक सहायता के लिए उनको कुछ रुपये दिए जाते थे ताकि वह अपना जीवन ठीक प्रकार से निर्वाह कर सकें। दहेज प्रथा को हवा तब ही मिलती है जब लड़की में कुछ कमी हो जैसे कि वह विकलांग हो, या उसका रंगरूप साँवला होने पर लड़की वाले अपनी लड़की की शादी करने के लिए लड़के वालों को दहेज के रूप में बहुत सारे रुपये और अन्य विलासिता की वस्तुएँ देते हैं। जिससे इस प्रथा को और भी हवा मिलती है और वर्तमान में तो यह स्थिति है कि अगर लड़का कोई सरकारी नौकरी या किसी बड़े पद है तो उसको दहेज देना जरूरी है लड़के वाले इसके लिए विशेष मांग रखने लगे हैं जिसके कारण गरीब परिवार की लड़की वालों की आधी कमाई तो अपनी बेटी की शादी में ही चली जाती है और इसके कारण दहेजप्रथा के अभिशाप ने जन्म लिया है।

दहेजप्रथा का जहरीला दंश सदियों से चला आ रहा है और अब लोगों ने इसे परम्परा का रूप दे दिया है जिसके कारण लोगों को लगता है कि दहेज लेना और देना अनिवार्य है इसके खिलाफ भारत सरकार ने कई कानून बनाए है लेकिन उसके सही पालन नहीं होने के कारण लोगों का दहेज के प्रति आत्मविश्वास और भी बढ़ गया है। दहेजप्रथा के कारण सभी लोग अमीर परिवारों में ही शादी करना चाहते है क्योंकि उनको उम्मीद होती है कि उनको वहाँ ज्यादा दहेज मिलेगा जिससे गरीब परिवारों की लड़कियों की शादी नहीं हो पाती है और अगर कोई करना भी चाहता है तो लड़के वाले इतना दहेज मांगते है कि गरीब परिवार वाले दहेज की रकम को चुकाने में असमर्थ होते हैं। इसके कारण एक और समस्या जन्म ले रही है। लड़कियों को कोख में ही मारे जाने लगा है क्योंकि हमारे आधुनिक भारत में अब गर्भ में ही पता लगाया जा सकता है कि लड़का होगा या लड़की, अगर गर्भ में लड़की पाई जाती है तो उसके कोख में ही मरवा दिया जाता है क्योंकि लोग सोचते है कि लड़कियां किसी काम की नहीं होती और उनकी शादी पर दहेज भी देना पड़ेगा।

कारण: दहेज प्रथा का यह विकराल रूप धारण करने के कई कारण है जैसे कि हमारे समाज में चले आ रहे पुराने रीति रिवाज और लोगों का लालच, अशिक्षा, लोगों की दकियानूसी सोच के कारण इस प्रथा को बढ़ावा मिल रहा है।

1. **पुराने रीति रिवाज:** लोग दहेज लेने के लिए पुराने रीति रिवाजों का सहारा लेते है लड़के वाले लड़की वालों से कहते है कि यह तो सदियों से चलती आ रही परम्परा है इसे कैसे रोके यह तो गलत होगा, जबकि लड़के वाले इस बात को भली-भाँति जानते है कि पुराने जमाने में लोग अपने शौक और सामर्थ्य के अनुसार लड़की को उपहार देते थे।
2. **पुरुष प्रधान समाज:** भारत एक पुरुष प्रधान समाज है इसमें औरतों को अपनी बात रखने को अधिकार नहीं होता, उन्हें बचपन से एक ही बात सीखाया जाता है कि पुरुष की सेवा करना ही उनका परम धर्म है उन्हें पुरुषों की हर बात मानना है ये सब सोचकर महिला अपने आप को कमजोर मान लेती

है और इस दहेज रूपी महामारी की शिकार हो जाती है।

3. **अशिक्षा:** हमारे देश में बहुत सारे लोग ऐसे है जो पढ़े लिखे नहीं है वो यह समझते हैं कि अगर दहेज नहीं दिए तो उनकी बेटी की शादियाँ होगी ही नहीं, उन्हें भारत सरकार द्वारा बनाये गये कानून के बारे में भी पता नहीं है जिसका लाभ लालची लोग उठाते हैं।

4. **दहेज एक प्रतिष्ठा का विषय:** बहुत सारे लोग आज भी ये सोचते है कि अगर उनके लड़के को कम दहेज मिला या ना मिला तो उनकी समाज में उनकी प्रतिष्ठा समाप्त हो गई वो यह समझते है कि जो लड़के वाले जितना ज्यादा दहेज लेंगे समाज में उनकी उतनी प्रतिष्ठा होगी। इससे भी दहेजप्रथा को बढ़ावा मिला है।

5. **रूपरंग या कोई विकार:** साधारणतः ऐसा देखा जाता है कि हर कोई यह कहता है कि हमें सुंदर लड़की चाहिए शादी के लिए कोई भी साँवली लड़की या विकलांग से शादी नहीं करना चाहता ऐसी परिस्थिति में लड़की वालों को दहेज देना मजबूरी बन जाती है चूँकि वो जानते हैं कि दहेज ही एक मात्र सहारा है जिससे इस कन्या का कल्याण हो सकता है। ऐसे में दहेजलोभी मुँहमांगा कीमत लड़की वाले से वसुल करते हैं।

6. **बेरोजगारी:** बेरोजगारी भी दहेजप्रथा का एक प्रमुख कारण है जब बेरोजगार की शादी हो जाती है तो वो व्यवसाय शुरू करने के नाम पर ससुरालवालों से पैसे ले लेता है कि व्यवसाय शुरू करके हम अपने परिवार का जीवन सुखमय व्यतीत करेंगे लेकिन ऐसे व्यक्ति कभी कोई व्यवसाय नहीं करते घर बैठ कर सिर्फ उसी पैसे को खाते रहते है और जब पैसे खत्म हो जाता है तो पत्नी को कहते है कि जाओं और अपने पिता से पैसा मांग कर लाओं नहीं तो जान से मार देंगे।

दुष्परिणाम: वर्तमान समय में हम देख ही रहे हैं कि दहेज प्रथा के कारण महिलाओं का कितना शोषण हो रहा है उनको कितना प्रताड़ित किया जा रहा है आए दिन हम समाचार पत्र में पढ़ते है कि दहेज के कारण लड़के वालों ने लड़की को जिंदा जलाया या घर से बाहर निकाला। अब इसी से अंदाजा लगाया जा सकता है कि लोगों की मांसिकता कितनी गिर गई है। दहेज प्रथा के कारण ही जब किसी घर में कोई लड़की जन्म लेती है तो उस घर के लोग सहम जाते हैं कि अब इसकी शादी में इतने धन कहाँ से लाएंगें। दहेज प्रथा के दुष्परिणाम इस प्रकार हैं।

1. **लड़कियों का शोषण:** शादी के बाद लड़के वाले लड़की को यह कहते हैं कि अपने मायके से धन की डिमांड करो और इतना पैसा लाओं अगर नहीं लाओगी तो तुम्हारा खैर नहीं, यह प्रताड़ना इतना बढ़ जाता है कि कभी-कभी लड़की आत्महत्या कर लेती है।

2. **लड़कियों के साथ भेद-भाव:** लड़की के साथ उनके अपने ही घर में भेद-भाव होना शुरू हो जाता है घर वाले कहते हैं कि ये तो परायी है इसको पढ़ा लिखा कर क्या फायदा, उसे सभी चीजों में आजादी नहीं दी जाती है।

3. **घटता लिंगानुपात:** विज्ञान के आगे बढ़ने से अब गर्भ में ही पता चल जाता है कि लड़का है या लड़की। लड़की को खर्च के डर से गर्भ में ही मरवा दिया जाता है जिससे लिंगानुपात में भारी अन्तर पर रहा है।

4. **जनसंख्या वृद्धि:** लोग लड़के की चाह में बच्चे पे बच्चे पैदा कर रहे हैं किसी को दो लड़कियाँ अगर होती है तो वह ऑपरेशन नहीं करवाएगा, वह तब तक बच्चा पैदा करता रहेगा जब तक उसको पुत्र की प्राप्ति न हो, इससे जनसंख्या में बहुत भारी वृद्धि होती है।

5. **देश के विकास में बाधा:** दहेज प्रथा के कारण जनसंख्या तो बढ़ ही रही है साथ ही बेजरोजगारी भी बढ़ रही है इससे देश की विकास में बाँधा उत्पन्न हो रही है।

दहेजप्रथा को रोकने के उपाय:

1. दहेज रोकने के लिए तो बहुत कानून बनाये गये है उनको धरातल पर लाने की जरूरत है ताकि सबका हित हो सके।

2. लड़के और लड़की को खुल कर इसका विरोध करना होगा, कि जहाँ दहेज की बात होगी वहाँ हम शादी नहीं करेंगे।

3. साथ ही आपके समाज में जहाँ कहीं भी दहेज की बात हो रही है उसका खुलकर विरोध करना होगा, ऐसा होना चाहिए न लेंगें और न लेने देंगें।

4. हमारे समाज में ऐसा नियम होना चाहिए कि एक निश्चित समय के अंदर किसी की शादी नहीं होती है तो उससे फिर कोई शादी नहीं करेगा, उसका सामाजिक स्तर पर बहिष्कार करना होगा।

5. लड़के और लड़की दोनों को आत्म-निर्भर बनना पड़ेगा ताकि वो अपने अविभावक पर बोझ न पड़े।

6. सबसे अंत में एक खासबात यदि आप दहेज देना नहीं चाहते हैं तो कोई बात नहीं, मत दीजिए लेकिन जब अपने लड़के की शादी करनी हो तो उस वक्त एक लड़के के पिता हिसाब से न सोचकर एक लड़की के पिता के हिसाब से सोचकर अपने लड़के की शादी दहेजमुक्त करें।

किसी ने कहा है कि

मर जाऊ तो मुझे कफन ओढ़ा देना।
लोग पुछे तो कारण दहेजप्रथा बता देना।।

हिंदी भाषा एवं बोलियाँ

- पश्चिमी हिंदी की कितनी बोलियाँ हैं : पाँच
- पश्चिमी हिंदी की कौन-कौन सी बोलियाँ हैं : खड़ी बोली या कौरवी, ब्रजभाषा, हरियाणी, बुंदेली और कन्नौजी
- पूर्व हिंदी की कितनी बोलियां हैं : अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी
- राजस्थानी हिंदी की कितनी बोलियां हैं : मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती, मालवी
- पहाड़ी हिन्दी को कितने भागों में बांटा गया है : पश्चिमी पहाड़ी और मध्यवर्ती पहाड़ी (कुमाऊंनी तथा गढ़वाली)
- बिहारी में हिन्दी की कितनी बोलियां हैं : तीन- मगही, भोजपुरी और मैथिली
- भाषा के लिए हिंदी शब्द का प्राचीनतम प्रयोग कहाँ मिलता है : शरफुद्दीन के जफरनामा में
- हिंदी का वास्तिव आरंभ कब से माना जाता है : 1000 ई.
- हिंदी क्षेत्र की बोलियों में सबसे ज्यादा कौन-सी बोली बोली जाती है : भोजपुरी
- साहित्यिक दृषि से हिंदी भाषा की सबसे महत्वपूर्ण बोली कौन-सी है : बज्रभाषा
- ताज्जुबेकिस्तान में कौन सी हिंदी बोली जाती है : बज्रभाषा
- भारत के बाहर सबसे ज्यादा अवधी कहाँ बोली जाती है : फिजी
- हिंदी का पहला समाचार पत्र कौन था : उदंत मार्तण्ड
- अशोक के समय राजकाज की भाषा क्या थी : पाली
- मुहम्मद गोरी से लेकर अकबर तक राजकाज की भाषा क्या थी : हिंदी
- संविधान सभा में हिंदी को राजभाषा बनाने का प्रस्ताव किसने प्रस्तुत किया था : गोपाल स्वामी आयंगर
- जनसंख्या की दृष्टि से सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में हिन्दी का कौन-सा स्थान है : तीसरा
- भारतीय लिपियों में सर्वश्रेष्ठ लिपि किसे मानी गई है : ब्राह्मी लिपि
- तुलसी रचित विनय पत्रिका की क्या भाषा है : ब्रज
- रामचरितमानस किस भाषा में लिखा गया है : अवधी
- पश्चिमी हिंदी की सबसे प्रमुख बोली कौन है : ब्रजभाषा
- पश्चिमी हिंदी किस अपभ्रंश से विकसित हुई है : शौरसेनी
- किस क्षेत्र की बोली को काशिका कहा गया है : बनारस
- बिहारी, बंगला, उड़िया और असमिया का उद्‌भव किस अपभ्रंश से हुआ है : मागधी

राष्ट्र-निर्माण और नारी

पवन कुमार[1] एवं गीता कुमारी

[1]अवर श्रेणी लिपिक

भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर (बिहार)

राष्ट्र और उससे संबंधित प्रत्येक व्यक्ति नारी हो या पुरुष उनका आपस में गहरा सम्बन्ध होता है। इसे यूं कहें कि व्यापक भावनात्मक सत्ता का नाम ही राष्ट्र है तो गलत नहीं होगा। मानव प्राणियों के अस्तित्व के कारण ही राष्ट्र अपना अमूर्त स्वरूप को ग्रहण करता है। राष्ट्र के अन्तर्गत जीवन-यापन करने वाले व्यक्तियों व मानव प्राणियों के जीवन-स्तर एवं उनकी सुरक्षा भी उसी सम्बन्धों पर आधारित होती है। जब हम मानव प्राणियों की बात करते हैं तो पुरुष के साथ नारी का अस्तित्व स्वतः ही साकार हो उठता है। नारी का मूल रूप मादा व जननी है जो नर-मादा सभी प्रकार के जीवन को उत्पन्न करती है, जिसमें मानव, जीव-जन्तु, पेड़-पौधे एवं फसलें सभी शामिल हैं जिन्हें नारी व मादा न केवल जन्म देती है, बल्कि अपने अंतर के अमृत से पाल-पोसकर बड़ा भी करती हैं। सुखी एवं समृद्ध जीवन जीने के योग्य बनाती है। तो क्या नारी सत्ता के पूर्ण अस्तित्व की सामान्य स्वीकृति और सहयोग के बिना किसी राष्ट्र के नव-निर्माण की कल्पना की जा सकती है।

परंपरा के अनुरूप नारी का स्थान यदि घर-परिवार तक ही सीमित मान लिया जाए तब भी नारी का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, वह इसलिए कि समाज और राष्ट्र सभी की सत्ता का उदगम् घर परिवारों के साकार अस्तित्व से ही उत्पन्न होता है। नारी, समाज एवं राष्ट्र का वह बुनियाद है जिसकी उपेक्षा एवं अभाव में किसी भी प्रकार के निर्माण की बात तक नहीं सोची जा सकती। गृहस्वामिनी के क्षेत्र में एक सीमित अधिकार क्षेत्र तक रहकर भी नारी सृजनात्मक लालन-पालन एवं संस्कार दे ही देती हैं तभी तो व्यक्ति के मन में धार्मिकता, सामाजिकता एवं राष्ट्रीयता का भाव जागृत होता है और, समाज एवं राष्ट्र के प्रति प्रेम एवं लगाव बनाये रखता है। फलस्वरूप व्यक्ति अपने समाज एवं राष्ट्र के नव-निर्माण के कार्यों में तत्परता से जुटा रहता है। घर में रहकर भी नारी ही पुरुष एवं परिवार के अन्य सदस्यों को वह संस्कार के भाव, विचार, प्रेरणा और सक्रियता प्रदान करती हैं जो घर से बाहर समाज एवं राष्ट्र-निर्माण के लिए नींव व बुनियाद के रूप में काम करती है।

पौराणिक काल- से ही नारी किसी न किसी रूप में राष्ट्र-निर्माण में अपनी अहम भूमिका अदा करती आ रही हैं जिसे हम कभी भुला नहीं सकते। उदाहरण के लिए अयोध्या नरेश राजा दशरथ के युद्ध के समय उनके रथ के पहिये कि कील निकल जाने पर उनके सारथी के रूप में उनके रथ पर उपस्थित रानी केकयी द्वारा अपनी अंगुली के सहारे रथ के पहिये का संतुलन बनाये रखा जिसके परिणामस्वरूप राजा दशरथ को युद्ध में विजय प्राप्त हुआ। रानी केकयी द्वारा किया गया वह कार्य किसी राष्ट्र-निर्माण से कम नहीं आंका जा सकता। इस बात में दो राय नहीं कि रानी केकयी सारथी के रूप में उस रथ पर मौजूद नहीं होती तो शायद उस युद्ध में राजा दशरथ की पराजय तय थी।

हाँलाकि मध्यकाल- में नारी की दशा सही नहीं थी, पुरुषों द्वारा उन्हें भोग-विलास की वस्तु से अधिक कुछ नहीं समझा जाता था। इतना ही नहीं नारी, सती प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों से भी जुझ रही थी जिसमें पति के देहान्त होने पर पत्नी (नारी) को जलते हुए चिता पर जिन्दा जला दिया जाता था। परंतु सम्पूर्ण भारत में ऐसा नहीं था। यही वह दौर था जब रजिया सुलतान, चाँद बीबी, जीजा बाई, अहिल्या बाई और रानी लक्ष्मी बाई जैसी वीरांगनाओं का उदय हुआ जिन्होंने पुरुष प्रधान समाज को चुनौती दी और नारीत्व का परचम लहराया जिसका प्रमाण हम इतिहास के पन्नों पर आसानी से देख सकते हैं।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम- में भी नारी की अहम भूमिका रही है जैसे इंडियन नेशनल कांग्रेस के प्रथम महिला अध्यक्ष के रूप में श्रीमती एनी बेसेंट, सरोजिनी नायडु, विजयालक्ष्मी पंडित, आजाद हिन्द फौज के कप्तान लक्ष्मी सहगल और बेगम हजरत महल जैसी अनेक नारियों ने पुरुषों के साथ कंधा से

कंधा मिलाकर स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया।

इतना ही नहीं भारतीय राजनीति में- प्रथम महिला प्रधानमंत्री के रूप में श्रीमती इंदिरा गांधी, प्रथम महिला राष्ट्रपति के रूप में श्रीमती प्रतिभा देवी सिंह पाटील के नाम अमिट है। इनके अलावा भारतीय राजनीति के अहम् भूमिका निभाने में श्रीमती सुषमा स्वराज जैसी न जाने कितनी महिलाएं समाज और नारीयों के लिए मार्गदर्शक बनीं। इन नारियों द्वारा राष्ट्र-निर्माण में किये गए योगदानों को आने वाली पीढ़ी भुला नहीं पाएगी।

आज के दौर में नारी- किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से पीछे नहीं है घर के चुल्हे-चौके से लेकर अंतरिक्ष की ऊँचाईयों पर चहलकर्मी करने तक सभी क्षेत्रों में नारी, पुरुषों से कदम से कदम मिलाकर चल रहीं हैं। पढ़ाई के क्षेत्र में, अनुसंधान क्षेत्र में, खेल जगत के क्षेत्रों में, सिनेमा व एक्टिंग के क्षेत्रों में, सरकारी एवं गैर-सरकारी सेवाओं के क्षेत्रों में इतना ही नहीं पुलिस बल एवं सैन्य बलों में भी आज की नारी अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुकी है और राष्ट्र-निर्माण में अपना योगदान दे रही हैं। उदाहरण के लिए अंतरिक्ष वैज्ञानिक कल्पना चावला, मांउट एवरेस्ट फतह करने वाली पहली महिला वछन्दरी पाल, प्रथम महिला आई.पी. एस. अधिकारी किरण वेदी, खेल जगत में राष्ट्र का नाम रोशन करने वाली सानिया मिर्जा, साइना नेहवाल, मैरी कौम तथा सिनेमा व एक्टींग में अपनी हुनर का लोहा मनवाने वाली श्री देवी, रेखा, प्रियंका चोपड़ा एवं दीपिका पादुकोण जैसे न जाने कितने नारियों ने अपने-अपने क्षेत्रों में अहम् योगदान देकर दुनियाँ में राष्ट्र का गौरव बढ़ाया है।

मुझे लगता है सम्पूर्ण विश्व में ऐसा कोई राष्ट्र नहीं होगा जिसके निर्माण में नारियों का योगदान न हुआ हो। अतः यह कहना गलत नहीं होगा कि राष्ट्र-निर्माण में नारी व आधी आबादी की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है। अतः नारी सत्ता के पूर्ण अस्तित्व की सामान्य स्वीकृति और सहयोग के बिना किसी राष्ट्र के नव-निर्माण की तो क्या, उसके अस्तित्व की कल्पना तक कर पाना संभव नहीं है।

''आप अपना भविष्य नहीं बदल सकते, आप अपनी आदतें बदल सकते हैं
और निश्चित रूप से आपकी आदतें आपके भविष्य को बदल देंगी।''

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ

लोकेश कुमार

टी-1

भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर (बिहार)

परिचय

भारत में निरंतर पुरुषों की तुलना में महिलाओं की घटती संख्या एवं उनकी शिक्षा के प्रति समाज में व्याप्त दुराग्रह को मिटाने के लिए 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' अभियान का शुभारम्भ किया गया। नारी के आर्थिक सशक्तिकरण, स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वावलम्बन आदि की महती आवश्यकता को ध्यान में रखकर देखें तो यह योजना एक क्रान्तिकारी कदम है। प्रधानमंत्री की महत्वाकांक्षी योजना 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' का शुभारंभ 22 जनवरी, 2015 को हरियाणा के पानीपत से किया गया।

वर्णन

इस योजना के शुभारंभ के लिए हरियाणा का चयन इसलिए किया गया क्योंकि वहाँ 0-6 आयु वर्ग का लिंगानुपात 879 है, जो राष्ट्रीय लिंगानुपात 919 से काफी कम है। इस योजना के प्रति जागरूकता के लिए प्रसिद्ध अभिनेत्री माधुरी दीक्षित को ब्रांड अम्बेस्डर बनाया गया है। इस योजना को सफल बनाने के लिए स्थानीय स्तर की दो महिला कार्यकर्ताओं को जोड़ा जाएगा।

यद्यपि इस योजना का क्रियान्वयन महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, स्वास्थ्य मंत्रालय, परिवार कल्याण मंत्रालय एवं मानव संसाधन विकास मंत्रालय संयुक्त रूप से काम कर रहे हैं। तथापि इसकी सफलता व्यापक जन भागीदारी से ही सम्भव है। इसके लिए हमें अपनी पितृसत्तात्मक सोच को बदलनी होगी, बेटा-बेटी के बीच के विभेद को मिटाना होगा तथा इन सबसे से बढ़कर इस अवधारणा को समाप्त करने के लिए जन जागरूकता का व्यापक प्रचार-प्रसार करन होगा। लैंगिक असमानता की भावना को दूर करने का सबसे बड़ा एवं सशक्त हथियार शिक्षा है, परंतु यह हमारे समाज की विडंबना ही है कि पंजाब, दिल्ली, हरियाणा पश्चिमी उत्तर प्रदेश जैसे उच्च शिक्षा दर वाले राज्यों में कन्या भ्रूण हत्या की घटनाएं अपेक्षाकृत ज्यादा घटित होती हैं।

सरकार के साथ-साथ आम नागरिक की सहभागिता के प्रयासों से 'बेटी बचाओं, बेटी पढ़ाओ, अभियान सार्थक सिद्ध होती दिख रही है। हाल में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार हरियाणा का लिंगानुपात 2015 में जहाँ 879 था, वहीं अप्रैल 2017 में 950 के स्तर पर पहुँच गया है। यह पिरवर्तन बहुआयामी रूप में देखेन को मिल रहा है। लेकिन अभी सुरक्षा तथा शिक्षा के क्षेत्र में अधिक बल देने की आवश्यकता है।

इस योजना का भविष्योन्मुखी होना अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए इसे सार्वजनिक विर्मश का विषय बनाना, सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में स्थानीय महिला संगठनों/युवाओं की सहभागिता लेते हुए पंचायती राज्य संस्थाओं, स्थानीय निकायों और जमीनी स्तर से जुड़े हुए कार्यकर्ताओं आदि के समायोजित प्रयासों से इसे सफल बनाया जा सकता है।

उद्देश्य

- कन्या भ्रूण हत्या की रोकथाम
- कन्याओं के अस्तित्व को बचाना और उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करना
- बालिकाओं की शिक्षा और भागीदारी सुनिश्चित करना

उपसंहार

सशक्त भारत का निर्माण आधी आबादी के सशक्तिकरण को अनदेखा करके संभव नहीं हो सकता। अतः समय रहते बेटियों के प्रति दुर्भावना को त्यागना, उनकी परवरिश, शिक्षा आदि सुनिश्चि करना हमें अपना नैतिक कर्तव्य समझना होगा। तभी हमारा परिचय सानिया मिर्जा, साईना नेहवान, साक्षी मलिक, जैसी प्रतिभाशाली बेटियों से हो पाएगा, जो देश को गौरवान्वित कर रही हैं।

गगनयान-भारत का पहला मानव अंतरिक्ष कार्यक्रम

एकता

कनिष्ठ लिपिक

भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर (बिहार)

15 अगस्त, 2018 का दिन जब देश अपना 68वां स्वतंत्रता दिवस मना रहा था, तब हमारे यशस्वी प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेन्द्र मोदी जी ने लाल किले के प्राचीर से देश के नाम अपने संबोधन में स्वतंत्र भारत के पहले मानव अंतरिक्ष कार्यकम 'गगनयान' की घोषणा की। साथ ही साथ भारत की 130 करोड़ जनता को उन्होंने यह आश्वासन भी दिया कि सन् 2022 तक देश का कोई न कोई नागरिक अंतरिक्ष की सैर अवश्य करेगा। इस प्रकार यह अद्वितीय उपलब्धि हासिल करने वाला भारत अमेरिका, रूस और चीन के बाद विश्व का चौथा देश बन जाएगा।

गगनयान भारतीय मानवयुक्त अंतरिक्ष यान है। यह अंतरिक्ष कैप्सूल तीन लोगों को ले जाने के लिए तैयार किया गया है। हाल ही में विश्व के दो प्रमुख देशों-फ्रांस एवं रूस ने भारत के इस मिशन में सहयोग करने का आश्वासन दिया है। आईए, एक नजर डालते हैं गगनयान मिशन के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर।

प्रमुख बिंदु

- इस कार्यक्रम के साथ ही भारत 'मानव अंतरिक्ष यान मिशन' शुरू करने वाला दुनिया का चौथा देश बन जाएगा। उल्लेखनीय है कि अब तक केवल अमेरिका, रूस और चीन ही इस उपलब्धि को हासिल कर पाए हैं।
- मिशन का उद्देश्य पाँच से सात वर्षों के लिए अंतरिक्ष में तीन सदस्यों का एक दल भेजना है।
- गगनयान को लॉन्च करने के लिए जी.एस.एल.वी.एम.के-थ्री लॉन्च व्हिकल का उपयोग किया जाएगा, जो इस मिशन के लिए आवश्यक पेलोड क्षमता से परिपूर्ण है।
- इस अंतरिक्ष यान को 300-400 किलोमीटर के पृथ्वी की निम्नतम कक्षा में रखा जाएगा।
- कार्यक्रम की कुल लागत 10,000 करोड़ रुपए से कम होगी जो कि माना जा रहा है कि यह अब तक की सबसे कम लागत वाला मानव अंतरिक्ष मिशन होगा। यह भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) के लिए अपने आप में एक महान उपलब्धि होगी।
- इसरो ने इस कार्यक्रम के लिए आवश्यक पुनः प्रवेश मिशन क्षमता, क्रू एस्केप सिस्टम, क्रू मॉड्यूल कॉन्फिगरेशन, तापीय संरक्षण व्यवस्था, कंपन एवं प्रवर्तन व्यवस्था, जीवन रक्षक व्यवस्था की उप प्रणाली इत्यादि जैसी कुछ मूहत्वपूर्ण तकनीकों का विकास कर लिया है।

गगनयान मिशन के उद्देश्य

- इससे देश में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के स्तर में वृद्धि होगी।
- यह एक राष्ट्रीय परियोजना है, जिसमें कई संस्थान, अकादमिक और उद्योग शामिल हैं।
- यह औद्योगिक विकास में सुधार तथा युवाओं के लिए प्रेरणास्रोत साबित होगा।
- इससे सामाजिक लाभ के लिए प्रौद्योगिकी का विकास तथा अंतर्राष्ट्रीय सहयोग में सुधार होगा।

''एक इंसान एक बीज की तरह है या तो आप इसे वैसे रख सकते है जैसा वो है या आप इसे फूलों और फलों से लदे एक अदभूत पेड़ के रूप में विकसित कर सकते है।''

सदगुरू

विश्व योग दिवस की वर्तमान समय में प्रासंगिकता

योग प्राचीन भारतीय परंपरा की एक अमूल्य धरोहर है। यह हमारे मस्तिष्क और शरीर की एकता का प्रतीक है। यह मनुष्य एवं प्रकृति के बीच सामंजस्य स्थापित करता है। यह विचार, संयम तथा स्फूर्ति प्रदान करने करने के अतिरक्त स्वास्थ्य और मानव कल्याण के लिए समग्र दृष्टिकोण भी प्रदान करता है। यह सिर्फ व्यायाम मात्र नहीं है, अपितु अपने भीतर समानता की भावना लिए सृष्टि और प्रकृति के बीच की एक कड़ी है। हमारी बदलती आधुनिक जीवनशैली में यह हमें वह चेतना प्रदान करता है, जो हमें जलवायु परिवर्तन से निपटने में सहायता कर सकता है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मादी जी ने अपने संयुक्त राष्ट्र के पहले संबोधन में योग की प्रासंगिकता को रेखांकित करते हुए दुनिया को इसे अपनाने के लिए आह्वान किया था, जिसके फलस्वरूप आज पूरे विश्व में 21 जून को 'विश्व योग दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

योग को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति दिलाने के लिए श्री रविशंकर ने दुनिया के अनेक देशों से मिलकर इसके प्रति अपनी सहमति दिलाने का आग्रह किया तथा योग के सूक्ष्म पहलुओं को बताया कि किस प्रकार योग से मन और तन स्वस्थ रह सकता है।

वर्तमान में अनेक शारीरिक रोग हैं, जैसे मधुमेह, गठिया, रक्तचाप, हृदय रोग, फेफड़ा एवं किडनी संबंधी रोग, लकवा, कुष्ठ, एलर्जी आदि सभी योग दिनचर्या का अनुपालन करने से ठीक हो सकते हैं। अतः आधुनिक सभ्यता के कष्टों का निवारण योग से ही संभव है।

परंतु इसके साथ ही हमें अपने आहार की मात्रा, गुणवत्ता एवं आहार के उपयुक्त समय को भी संतुलित करना होगा। उचित समय एवं उचित मात्रा में सात्विक आहार आवश्यक है। आहार के द्वारा हमारा शारीरिक उपापचय एवं मनोवृत्तियाँ नियंत्रित होती हैं। सब कुछ कर लेने के बाद भी यदि आहार नियंत्रित नहीं किया गया तो आपेक्षिक परिणाम प्राप्त नहीं हो सकते हैं।

इस प्रकार से योग एवं इसकी सहायक क्रियाओं द्वारा मनुष्य की समग्र चेतना एवं ऊर्जा का विकास होता है। मानव की विशेषता सिर्फ उसकी चेतना से ही है। इस चेतना को जितना अधिक विकसित किया जाए, मनुष्य की विशिष्टता उतनी ही बढ़ती जाएगी। इस तरह से योग एक जीवन पद्धति है, जिसका संबंध किसी धर्म सम्प्रदाय या मत से न होकर संपूर्ण मानवता से है। यह कहना कि योग केवल हिंदू जीवन पद्धति है, गलत होगा। इस प्रकार से योग समस्त मानवता की धरोधर है, जिसका संबंध सिर्फ किसी धर्म विशेष या सम्प्रदाय से न होकर समस्त विश्व समुदाय से है। मनुष्य के कष्टों का निवारण एवं कल्याण केवल और केवल योग को अपनाने से ही संभव है।

इसी का परिणाम है कि प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के आह्वान पर संयुक्त राष्ट्र संघ ने समस्त मानवता के कल्याण एवं उनकी रक्षा के लिए 21 जून को 'अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस' मनाने का प्रस्ताव पारित कर भारत की इस धरोहर को संरक्षित करने पर जोर दिया।

''शरीर से प्रेम है तो आसन करें, साँस से प्रेम है तो, प्राणायाम करें आत्मा से प्रेम है तो ध्यान करें और परमात्मा से प्रेम है तो समर्पण करें।''

स्वामी रामदेव

हिन्दी के प्रमुख कवियों की एक झलक

उपज्ञा साह एवं श्याम पंडित

तकनीकी साहायक

भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर (बिहार)

गोस्वामी तुलसीदास (1511-1623) हिंदी साहित्य के महान कवि थे। इनका जन्म सोरों शूकरक्षेत्र वर्तमान में कासगंज (एटा) उत्तर प्रदेश में हुआ था। कुछ विद्वान इनका जन्म राजापुर जिला बाँदा गोस्वामी तुलसीदास (1511-1623) हिंदी साहित्य के महान कवि थे। इनका जन्म सोरों शूकरक्षेत्र, वर्तमान में कासगंज (एटा) उत्तर प्रदेश में हुआ था। कुछ विद्वान् इनका जन्म राजापुर जिला बाँदा (वर्तमान में चित्रकूट) में हुआ मानते हैं। कुछ विद्वान तुलसीदास का जन्म गोण्डा जिला के सुकरखेत को भी मानते है। इन्हें आदि काव्य रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि का अवतार भी माना जाता है। श्रीरामचरितमानस का कथानक रामायण से लिया गया है। रामचरितमानस लोक ग्रन्थ है और इसे उत्तर भारत में बड़े भक्तिभाव से पढ़ा जाता है। इसके बाद विनय पत्रिका उनका एक अन्य महत्त्वपूर्ण काव्य है। महाकाव्य श्रीरामचरितमानस को विश्व के 100 सर्वश्रेष्ठ लोकप्रिय काव्यों में 46वाँ स्थान दिया गया

तुलसी ने मानस लिखा था जब जाति-पाँति-सम्प्रदाय-ताप से धरम-धरा झुलसी।

झुलसी धरा के तृण-संकुल पे मानस की पावसी-फुहार से हरीतिमा-सी हुलसी।

हुलसी हिये में हरि-नाम की कथा अनन्त सन्त के समागम से फूली-फली कुल-सी।

कुल-सी लसी जो प्रीति राम के चरित्र में तो राम-रस जग को चखाय गये तुलसी।

आत्मा थी राम की पिता में सो प्रताप-पुन्ज आप रूप गर्भ में समाय गये तुलसी।

जन्मते ही राम-नाम मुख से उचारि निज नाम रामबोला रखवाय गये तुलसी।

रत्नावली-सी अर्द्धांगिनी सों सीख पाय राम सों प्रगाढ प्रीति पाय गये तुलसी।

मानस में राम के चरित्र की कथा सुनाय राम-रस जग को चखाय गये तुलसी।

कबीर

ऐसी वानी बोलिए मन का आपा खोय, औरन को शीतल करे आपहु शीतल होय 1440 ई. में पैदा हुए कबीर एक आध्यात्मिक कवि थे। उनके लेखन ने भक्ति आंदोलन, सिख धर्म, संत मत और कबीर पंत को मुख्य रूप से प्रभावित किया है, इसलिए उन्हें संत कबीर भी कहा गया है। उनकी काव्य रचनाओं में बीजक, कबीर गढ़वाली, सखी ग्रंथ और अनुराग सागर शामिल हैं। वे पहले भारतीय संत थे, जो अपने युगल कविताओं के माध्यम से हिंदुओं और मुसलमानों दोनों के बीच सांप्रदायिक सौहार्द लाने का प्रयत्न किया था। कबीर ने अपने दर्शन में वर्णन किया है कि जीवन दो आध्यात्मिक सिद्धांतों, व्यक्तिगत आत्मा और भगवान की परस्पर क्रिया है। संत कबीर का निधन 1518 में हुआ।

चलती चक्की देख कर, दिया कबीरा रोय। दो पाटन के बीच में, साबुत बचा ना कोय।।

रहिमन चुप हो बैठिए, देख दिनन को फेर। जब अइहें निके दिन बनात न लगिहे देर।।

रहीमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय। टूटै तै फिर न जुड़ै, जुड़े गाठ पड़ जाय।।

लाहौर, मुगल काल (अब पाकिस्तान में) में 17 दिसंबर, 1556 में अब्दुल रहीम खान-ए-खाना का जन्म हुआ। इन्हें (रहीम) के नाम से भी जाना जाता है। वह अपने मातृ पक्ष से भगवान कृष्ण के एक वंशज माने जाते हैं। वह मुगल सम्राट अकबर के दरबार में नवरत्नों (नौ रत्नों) में से एक थे। रहीम की मृत्यु 1627 में हुई।

रामधारी सिंह दिनकर

सलिल कण हूँ, या पारावार हूँ मैं,

स्वयं छाया, स्वयं आधार हूँ मैं,

बाधा हूँ, स्वप्न हूँ, लघुवृत हूँ मैं,

नहीं तो व्योम का विस्तार हूँ मैं।।

रामधारी सिंह दिनकर एक वीर रस के कवि थ, जिनका जन्म 23 सितंबर, 1908 को बिहार के सिमरिया में हुआ था। स्वतंत्रता से पहले के उनके लेखन विद्रोही प्रवृति की थी। अपनी देशभक्ति की कृतियों के कारण उन्हें राष्ट्र कवि का खिताब दिया गया। वीर रस शैली के कवि होने के नाते वे कुरुक्षेत्र में चल

रहे युद्ध के पक्ष में हैं। यद्यपि युद्ध विनाशकारी है, तथापि महाभारत युद्ध स्वतंत्रता की रक्षा के लिए अपरिहार्य था। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं- रश्मि-रठी और रक्षण परशुराम। 24 अप्रैल, 1974 को उनका निधन हो गया।

सलिल कण हूँ, या पारावार हूँ मैं,
स्वयं छाया, स्वयं आधार हूँ मैं,
बाधा हूँ, स्वप्न हूँ, लघुवृत हूँ मैं,
नहीं तो व्योम का विस्तार हूँ मैं।।

रामधारी सिंह दिनकर एक वीर रस के कवि थ, जिनका जन्म 23 सितंबर, 1908 को बिहार के सिमरिया में हुआ था। स्वतंत्रता से पहले के उनके लेखन विद्रोही प्रवृति की थी। अपनी देशभक्ति की कृतियों के कारण उन्हें राष्ट्र कवि का खिताब दिया गया। वीर रस शैली के कवि होने के नाते वे कुरुक्षेत्र में चल रहे युद्ध के पक्ष में हैं। यद्यपि युद्ध विनाशकारी है, तथापि महाभारत युद्ध स्वतंत्रता की रक्षा के लिए अपरिहार्य था। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं- रश्मि-रठी और रक्षण परशुराम। 24 अप्रैल, 1974 को उनका निधन हो गया।

परंपरा को अंधी लाठी से मत पीटो, उसमें बहुत कुछ है, जो जीवित है, जीवनदायक है, जैसे भी हो ध्वंस से बचा रखने लायक है।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

जागो फिर एक बार, प्यार जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें, अरुण पंख तरुण किरण, खड़ी खोलती है द्वार, जागो फिर एक बार !

निराला का जन्म 16 फरवरी, 1896 को मिदनापुर, बंगाल में हुआ था। इन्होंने पंत, प्रसाद और महादेवी वर्मा के साथ चौयवड़ आंदोलन का बीड़ा उठाया। वे रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद और रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे महान व्यक्तित्वों से प्रेरित थे। मूल रूप से बंगाली माध्यम में शिक्षित निराला बाद में उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद चले गए, जहाँ उन्होंने हिंदी में लिखना शुरू किया। उनकी कृतियों में 'सरोज शक्ति', कुकुरमुत्ता, धवनी, राम की शक्ति पूजा, परिमल और अनामिका आदि प्रमुख हैं। उन्होंने 15 अक्टूबर, 1961 को अंतिम सांस ली।

कहते हो नीरस यह, बंद करो गान कहा छंद, कहा भाव कहाँ यहाँ प्राण?

जयशंकर प्रसाद

हिमालय के आँगन में उसे, प्रथम किरनो का दे उपहार, उषा ने हस अभिनंदन किया और पहनाया हीरक हर

30 जनवरी, 1889 को उत्तर प्रदेश के वाराणसी में जन्में जयशंकर प्रसाद आधुनिक हिंदी साहित्य के पिता थे। उनके कवि-कौशल की शैली को विशेष रूप से उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है। मानव प्रेम को अपनी कविता में उन्होंने बड़ी ही खूबसूरती से दर्शाया है। जयशंकर प्रसाद की कविता प्रेम-प्रसंग से लेकर देशभक्ति तक भिन्न-भिन्न होती है। प्रसाद वेदों से बहुत प्रभावित थे। 14 जनवरी, 1937 को उनका निधन हो गया।

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुध शुद्ध भारती, स्वमप्रभा समूज्ज्वला स्वतन्त्रता पुकारती, अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो, प्रसस्त पुण्य पंथ है- बढ़े चलो बढ़े चलो

सुमित्रानंदन पंत

जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं
वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं

सुमित्रानंदन पंत का जन्म 20 मई, 1900 को कुमाऊं, उत्तराखंड में हुआ था। वनस्पतियों और जीवों से समृद्ध स्थान से संबंधित सुमित्रानंदन पंत का काव्य रचना की ओर झुकाव स्वाभाविक था। वह बहुत कम उम्र में काव्य रचना करने लगी। एक समय वह श्री अरविंद के प्रभाव में थे। 1961 में उन्हें उनकी सबसे प्रसिद्ध कविता चिदम्बरा के लिए 1968 में पद्मभूषण और ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। पल्लव, वीणा, ग्रेट और गुंजन के अलावा उनके अन्य प्रशंसित कार्य कला और बुरहा चंद हैं, जिनके लिए उन्हें प्रतिष्ठित साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। 28 दिसंबर 1977 को उनका निधन हो गया।

माँ मेरे जीवन की हर
तेरा मंजुल हृदय हार हो
अश्रु कणो का यह उपहार
मेरे सफल- श्रमों का सार
तेरे मस्तक का हो उज्जवल
श्रम दृजलमय मुक्तालंकार

महादेवी वर्मा

मैं नीर भरी दुख की बदली
स्पंदन मे चीर निस्पंद बसा
क्रंदन मे आहत विश्व हंसा
नयनो मे दीपक से जलते,
मैं नीर भरी दुख की बदली !

वह चौयवाड़ा युग में रूमानीवाद के अग्रणी कवियों में से एक थी। उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद में 1907 में जन्मे महादेवी वर्मा को मीरा मॉडर्न के नाम से

जाना जाता था। कवि प्रयाग रासे के पहले प्रधानाध्यापक थे। उनकी कुछ कविताओं में शदीपशिखा, हिमालय, नीरजा, निहार और रश्मि गीत शामिल हैं। उनका उत्कृष्ट काव्य संग्रह यामा है, वह इससे बहुत प्रभावित हुई। इनको आधुनिक युग की मीरा कहा गया है 1987 में उनकी मृत्यु हो गई।

वो मुसकुराते फूल नहीं, जिनको आता है मुरझाना वे तारो के दीप नहीं, जिनको भाता है बुझ जाना

हरिवंश राय बच्चन

उनके नयनो का जल खारा, है गंगा की निर्मल धारा, पावन कर देगी तन मन को क्षण भर साथ बहो, दुखी मन से कुछ भी न कहो

छायावाद (रोमांटिक) पीढ़ी के इस मशाल वाहक का जन्म 27 नवंबर, 1907 को उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद में हुआ था। वह छंद की एक किताब-मधुशाला के लिए जाने जाते है। उन्होंने भारत की अधिकारिक भाषा के रूप में हिंदी में बहुत मेहनत की। विदेश मंत्रालय में अपने कार्यकाल के दौरान उन्होंने कुछ प्रमुख कृतियों का हिंदी में अनुवाद किया, जिनमें ओथेलो, मैकबेथ, भगवत गीता, रुबैयात और डब्ल्यू.बी. येट्स के कार्य शामिल हैं। उनके अन्य कार्यों के अलावा, चार भाग के धारावाहिक जीवनी, क्या भूलूँ क्या याद करूँ, नीद का निर्माण फिर, बसेरे से दूर, और अंतिम दशद्वार से सोपान तक, भी एक की जरूरत है। 18 जनवरी 2003 को उनका निधन हो गया।

मैथिलीशरण गुप्त

नर हो न नीराश करो मन को, कुछ कम करो कुछ कम करो, जग में रहके निज नाम करो

यह जन्म हुआ किस अर्थ अब, समझो जिसमें यह व्यर्थ न हो

3 अगस्त, 1889 को उत्तर प्रदेश के चिरगांव, झांसी में जन्मे मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रख्यात कवि थे। उन्होंने हिंदी लेखन में खड़ी बोली से परिचय कराया। 'साकेत', शरंग मे भंगश, भारत भारतीश, प्लासी का युद्ध और काबा कर्बला, उनकी उल्लेखनीय छंद हैं। वे भारतीय राजनीति से भी संक्षिप्त रूप से जुड़े रहे। उन्होंने 2 दिसंबर 1964 को *अंतिम सांस ली। जीवन पर सौ बार मारू मैं, क्या इस धन को गाड़ धरू मैं, यदि न उचित उपयोग करू मैं, तो फिर महा प्रलय है, जीवन की ही जय है।*

माखनलाल चतुर्वेदी

मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पाथ पर देना तुम फेंक, मातृ भूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पाथ पर जावे वीर अनेक,

उनका जन्म 4 अप्रैल, 1889 को मध्य प्रदेश के बवई गाँव में हुआ था। पंडित माखनलाल चतुर्वेदी हिंदी साहित्य के प्रख्यात कवि थे। वे प्रभा और कर्मवीर जैसी राष्ट्रीय पत्रिकाओं के संपादक थे। उनकी कविताओं के संग्रह में हिम तारांगिनीश, समरपान, युग चरण, दीप दीप जले, साहित्य देवता, काईसा चंद बाना देति है। और पुष्प की फिल्म शामिल हैं। 1954 में उन्हें उनके काम (हम तारांगिनी के लिए प्रतिष्ठित साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 30 जनवरी 1968 को उनका निधन हो गया।

कैसी है यह पतित कहानी, जीवन, यह मौलिक महमनी, रागो पर चढ़ता है पानी, अगम अछूती श्रम की रानी, जीवन, यह मौलिक महमनी।

''यह कठिनाइयों, कष्टों और समस्याओं से क्यों डरते हो? जब मुसीबतें आती हैं, तो आपको अपने कष्टों की प्रासंगिकता को समझने की कोशिश करनी चाहिए। प्रतिकूलता हमेशा आत्मनिरीक्षण के अवसर प्रस्तुत करती है।''

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

क्या करें, क्या न करें। स्वस्थ जीवन के अनमोल

रामजी गिरी

सहायक प्रशासनिक अधिकारी
भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर (बिहार)

सुझाव जीवन में अनेक ऐसे अपशकुन हैं, जिनका हम ध्यान रखें तो किसी भी समस्या का सामना हमें अपने दैनिक जीवन में नहीं करना पड़ेगा तथा सुख एवं समृद्धि बढ़ेगी।

- कभी भी यात्रा पर पूरा परिवार एक साथ न निकलें, आगे-पीछे निकलें। इससे यश की वृद्धि होती है।
- घर में सुबह-सुबह कुछ देर के लिए भजन अवश्य गाएँ।
- घर में कभी भी झाड़ू को खड़ा करके नहीं रखें, उसे पैर नहीं लगाएँ और न ही उसके ऊपर से गुजरें अन्यथा घर में बरक्कत की कमी हो जाती है। झाड़ू हमेशा छुपा कर रखें।
- बिस्तर पर बैठ कर कभी खाना न खाएं। ऐसा करने से धन की हानि होती है। लक्ष्मी घर से निकल जाती हैं तथा घर में अशांति आती है।
- घर में जूते-चप्पल इधर-उधर बिखेर कर या उल्टे-सीधे करके नहीं रखने चाहिए। इससे घर में अशांति उत्पन्न होती है।
- मुख्य द्वार के पास कभी-कभी कूड़ादान न रखें। इससे पड़ोसी शत्रु हो जाते हैं।
- सूर्यास्त के समय किसी को भी दूध-दही या प्याज मांगने पर न दें, इससे घर की बरक्कत समाप्त होती है।
- छत पर कभी भी अनाज या बिस्तर न धोएँ। हाँ, सुखा जरूर सकते हैं। इससे ससुराल से संबंध खराब होने लगते हैं।
- फल-फूल खाएँ। ये स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होते हैं। परंतु उसके छिलके कूड़दान में न डालें बल्कि बाहर फेकें। इससे मित्रों से लाभ प्राप्त होता है।
- महीने में एक बार किसी भी दिन घर में मिश्री युक्त खीर बनाकर परिवार सहित एक साथ जरूर खाएँ। इससे माँ लक्ष्मी की कृपा जल्दी बनती है।
- पहली रोटी गाय के लिए अवश्य निकालें। इससे देवता भी खुश होते हैं और पितरों को भी शांति मिलती है।
- पूजा घर में सदैव जल का एक कलश पानी भरकर रखें। जहाँ तक संभव हो सके तो कलश को ईशान कोण के हिस्से में रखें।
- आरती, दीप, पूजा अग्नि जैसे पवित्रता के प्रतीक वस्तुओं को मुँह से फूंक मारकर न बुझाएँ।
- मंदिर में धूप, अगरबत्ती व हवन कुंड की सामग्री दक्षिण पूर्व दिशा में रखें अर्थात आग्नेय कोण में रखें।
- घर के मुख्य द्वार पर दायी तरफ स्वास्तिक का चिह्न बनाएँ।
- घर में कभी भी जाले न लगने दें, नहीं तो भाग्य और कर्म पर जाले लगने लगते हैं और बाधा आती है।
- सप्ताह में एक बार जरूर समुद्री नमक अथवा सेंधा नमक से घर में पोछा लगाएँ। इससे नकारात्मक ऊर्जा दूर होती है।

'जल सेवन के उचित वक्त'

- सुबह उठने के बाद 3 ग्लास पानी का सेवन आंतरिक ऊर्जा को सक्रिय करता है।
- स्नान के बाद 1 ग्लास पानी का सेवन रक्त चाप को खत्म करता है।
- खाने से 30 मिनट पहले 2 ग्लास पानी के सेवन से पाचन शक्ति मजबूत होता है।
- सोने से पहले आधा ग्लास पानी का सेवन करने से हृदयाघात से मुक्ति मिलती है।

राशि वन : मानव जीवन पर प्रभाव

अमरेन्द्र कुमार, शेषधर पाण्डेय, रामकिशोर पटेल, रामजी गिरी एवं मुनीष कुमार

भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर (बिहार)

मनुष्य के जीवन में वृक्षों व वानस्पतिक पौधों का बहुत महत्व है। कुछ पौधों का हमारे जीवन में सकारात्मक तो कुछ पौधों का नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। प्राचीन भारतीय पौराणिक शास्त्रों के अनुसार प्रत्येक पौधे में एक औषधीय गुण है जो व्यक्ति को किसी भी रूप में लाभ पहुँचा सकता है। हमारे ज्योतिषशास्त्र में भी पौधों को बहुत महत्व वाला बताया गया है। प्राचीन भारतीय पौराणिक शास्त्रों में वर्णित 27 नक्षत्रों को 12 राशियों के समूह में रखा गया है। प्रत्येक राशि में 2 या 3 तीन नक्षत्र रखे गये हैं। यह माना जाता है कि प्रत्येक राशि में पड़ने वाले नक्षत्र व्यक्ति के जीवन, उसके व्यक्तित्व तथा उसके कल्याण को प्रभावित करते हैं। प्रत्येक राशि को वृक्षों से जोड़ा गया है। ऐसी मान्यता है कि राशि विशेष के व्यक्ति द्वारा राशि से संबंधित वृक्ष लगाने, पालन पोषण करने, रक्षा, पूजन एवं संवर्धन करने से उस विशेष व्यक्ति का कल्याण होता है। इस राशि वन में प्रत्येक राशि से संबंधित एक वृक्ष को दर्शाया गया है तथा प्रत्येक वृक्ष को ज्योतिषशास्त्र में वर्णित राशियों के आलेख के अनुसार संगत राशि के हिस्से में दिखाया गया है। यदि आप अपने घर-आंगन में उचित स्थान पर अपनी राशि अनुसार ये पेड़ या पौधे लगायें तो निश्चित रूप से आपको इसका भरपूर लाभ मिलेगा। ये पौधा आपके जीवन में आयी पेरशानियों को दूर करेगा। ये पौधा आपके आस-पास के वातावरण को शुद्ध करके उस स्थान पर अधिक मात्रा में आक्सीजन आपूर्ति करता है जिसका हमारे शरीर व हमारे जीवन के उपर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

मेषः इस राशि का स्वामी मंगल है और इस राशि वाले व्यक्ति को आंवला व आम का पौधे रोपण करना चाहिये। आंवला पित्त नाशक है व जीवन में खुशियाँ लाता है।

वृषभः इस राशि का स्वामी शुक्र है और इस राशि वाले व्यक्ति को गुलर व अशोक के पौधे रोपण करना चाहिये। गूलर से पूर्व जन्मों के दोष नष्ट हो जाते हैं व जीवन में फायदेमंद सिद्ध होता है।

मिथुनः इस राशि का स्वामी बुध है और इस राशि वाले व्यक्ति को बांस व बरगद के पौधे का रोपण करना चाहिये। इसके पौधे त्रिदोष को दूर करते हैं व जीवन में शत्रु भय को भी नाश करते हैं।

कर्कः इस राशि का स्वामी चन्द्र है और इस राशि वाले व्यक्ति को पीपल वा आंवला के पौधे का रोपण करना चाहिये। इसके पौधे पित्त दोष को दूर करते हैं व चन्द्र जीवन में मानसिक शांति देते हैं।

सिंहः इस राशि का स्वामी सूर्य है और इस राशि वाले व्यक्ति को ढाक व जामुन के पौधे रोपण करना चाहिये। इससे पित्त संबंधी रोगों का नाश होता है व जीवन में बौद्धिक प्रगति होती है।

कन्याः इस राशि का स्वामी बुध है और इस राशि वाले व्यक्ति को बेल व अमरूद के पौधे रोपण करना चाहिये। इससे वात संबंधी रोग का नाश होता है व जीवन में शत्रु भय नहीं रहता है।

तुलाः इस राशि का स्वामी शुक्र है और इस वाले व्यक्ति को अर्जुन या मौलसरी के पौधे रोपण करना चाहिये। इससे वात संबंधी रोग का नाश होता है साथ ही साथ पूर्व जन्मों के दोषों से भी मुक्ति मिलती है।

वृश्चिकः इस राशि का स्वामी मंगल है और इस राशि वाले व्यक्ति को सेमल व खैर व नीम के पौधे रोपण करना लाभदायक है। इससे वात संबंधी रोग का नाश होता है साथ ही साथ प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है।

धनुः इस राशि का स्वामी शनि है और इस राशि वाले व्यक्ति को कटहल या कदंब के पौधे रोपण करना चाहिये। पित्त संबंधी रोगों का नाश होता है।

मकरः इस राशि का स्वामी शनि है और इस राशि वाले व्यक्ति को शमी या कटहल के पौधे रोपण करना लाभदायक है। इससे त्रिदोष यानि तीनों तरह के दोष दूर होता है। इसके पौधे रोपण से धन, सुख वैभव में वृद्धि होती है।

कुंभः इस राशि का स्वामी शनि है और इस राशि वाले व्यक्ति को कदम्ब या शमी के पौधे रोपण करना चाहिये। इससे कफ रोग का नाश होता है साथ ही साथ धन, सुख, वैभव व प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है।

मीन: इस राशि का स्वामी बृहस्पति है और इस राशि वाले व्यक्ति महुआ या नीम का पौध रोपण करना चाहिये। इससे कफ रोग नाश होता है साथ ही साथ गुरू ज्ञान में वृद्धि होती है।

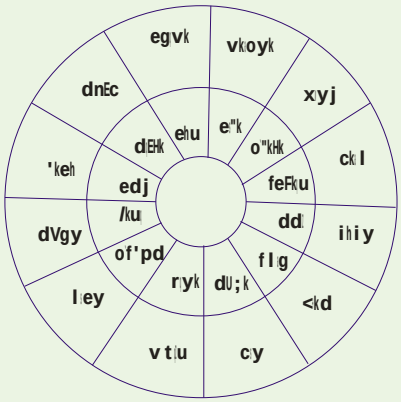

राशियाँ एवं उससे संबंधित वृक्षों की सूची

राशियाँ एवं उससे संबंधित वृक्षों की सूची

Øe l-	jkf'k dk uke	jkf'k dk Lokeh	Lkcf/kr o{kk dk uke	
			fgUnh	oKkfud uke ¼vxzsth½
1	मेष	मंगल	आंवला	*Emblica officinalis*
2.	वृषभ	शुक्र	गूलर	*Ficus glomerata*
3.	मिथुन	बुध	बंस	*Dendra calamus strictus*
4.	कर्क	चन्द्र	पीपल	*Ficus religiosa*
5.	सिंह	सूर्य	ढ़ाक	*Butea monosperma*
6.	कन्या	बुध	बेल	*Aegel marmelos*
7.	तुला	शुक्र	अर्जुन	*Terminalia arjuna*
8.	वृष्चिक	मंगल	सेमल	*Bombax malabaricum*
9.	धनु	बृहस्पति	कटहल	*Artocarpus integrifolia*
10.	मकर	शनि	शमी	*Acacia catechu*
11.	कुंभ	शनि	कदम्ब	*Anthocephalus cadamba*
12.	मीन	बृहस्पति	महुआ	*Madhuca indica*

भारत में हिन्दी भाषा की प्रमुख संस्थाएँ	
राजभाषा संघर्ष समिति : दिल्ली	नागरी लिपि परिषद् : नई दिल्ली
केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद् : नई दिल्ली	भारत–एशियाई साहित्य अकादमी : दिल्ली
साहित्य मंडल : नाथद्वारा, राजसमंद, राजस्थान	अखिल भारतीय हिन्दी संस्था संघ : नई दिल्ली
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति : वर्धा, महाराष्ट्र	मध्य प्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति : भोपाल
मुंबई हिन्दी विद्यापीठ : मुंबई	कर्नाटक महिला हिन्दी सेवा समिति : बेंगलूर
हिन्दी प्रचार परिषद् : बैंगलूर	केरल हिन्दी प्रचार सभा : तिरुवन्तपुरम, मैसूर, कर्नाटक
अखिल भारतीय भाषा : साहित्य सम्मेलन : पटना, बिहार	मणिपुर हिन्दी परिषद् : इम्फाल
राष्ट्रीय हिन्दी सेवी महासंघ : इन्दौर	अंग्रेजी अनिवार्यता विरोधी समिति : नकोदर, पंजाब
राष्ट्रीय हिन्दी परिषद् : मेरठ	हिन्दी साहित्य सम्मेलन : प्रयाग, इलाहाबाद
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा : चौन्नई, तमिलनाडू	हिन्दी प्रचार सभा : हैदराबाद, आंध्र प्रदेश
भारतीय भाषा प्रतिष्ठापन राष्ट्रीय परिषद् : मुम्बई, महाराष्ट्र	अखिल भारतीय साहित्य कलामंच : मुरादाबाद

संस्थान में हो रही विभिन्न गतिविधियों की एक झलक

संस्थान में हो रही विभिन्न गतिविधियों की एक झलक

संस्थान में हो रही विभिन्न गतिविधियों की एक झलक

संस्थान में हो रही विभिन्न गतिविधियों की एक झलक

ISO 9001 : 2008

राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर

ई-मेल : nrclitchi@yahoo.com
वेबसाइट : www.nrclitchi.org

army printing press
www.armyprintingpress.com
Lucknow (0522) 2565333